Miracle of AURA circle

आपको अवाचक कर दे वैसे तीन प्रभु महावीर के

Historical Fiction

युगप्रधान आचार्यसम पू.पं.श्री चंद्रशेखरविजयजी म.सा.

समर्पण

मात्र उनकी पवित्र aura = लेश्याके प्रभावसे

- आचारशिथिल संयमीओको आचारद्रढ बनानेवाले
महावीर महाराजाको....
- अतिकंजुस संसारीको धनशूर बनानेवाले
महावीर महाराजाको...
- कामविकारी लुँटेरोंको निर्मल बनानेवाले
महावीर महाराजाको...
- असहिष्णु पशुओको सहनशील बनानेवाले
महावीर महाराजाको...
- अनुचित व्हवहार करनेवालोको औंचित्यसभर बनानेवाले
महावीर महाराजाको...
- 'वचन से आचार महान है' एसा हम सबको सिखानेवाले
महावीर महाराजाको...

सद्भावपूर्वक यह पुस्तक अर्पण करता हूँ।

गुणहंसविजयजी.

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

1. कल्याण मंदिर, 2. रघुवंध (1-2 सर्ग), 3. कीरातार्जुनीच (1-2 सर्ग), 4. शिशुपालवध (1-2 सर्ग), 5. नैषधीचचरितम् (1-2 सर्ग) श्लोक, अर्थ, समास, अन्वय, भावर्थ सहित.

न्याय सिद्धांत मुक्तावलि (भाग 1-2) गुजराती विवेचन सहित.

व्याप्तिसंचक... चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित * सिद्धान्त लक्षण (भाग 1-2) चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित

सामान्यनिरूक्ति (गुजराती विवेचन) * अवच्छेदकत्वनिरूक्ति (गुजराती विवेचन)

आगम ग्रन्थो

ओधनिर्युक्ति (भाग 1-2)	द्रोणाचार्य वृत्ति + गुजराती भाषांतर (प्रताकारे)
ओ.नि. सारोद्धार (भाग 1-2)	विशिष्ट पंक्तिओ उपर विवेचन (प्रताकारे)
दसवैकालिक सूत्र (भाग 1 से 4)	हारिभद्रीवृत्ति + गुजराती भाषांतर
आवश्यक निर्युक्ति	(हारिभद्रीवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित भाग 1 से 8)
उत्तराध्ययन सूत्र	(शांतिसूरिवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित अध्ययन-1)
उपदेशमाला-सिद्धर्षिगणिवृत्ति	(54 गाथा) (गुजराती भाषांतर सहित)

सिद्धान्तरहस्यबिन्दुः (ओधनिर्युक्ति की विशिष्ट पंक्तिओनु रहस्य खोलती नई चन्द्रशेखरीया संस्कृत वृत्ति)

संयम-अध्यात्म-परिणतिपोषक ग्रन्थो

सामाचारी प्रकरण (भाग 1-2)	चन्द्रेशखरीयावृत्ति गुजराती भाषांतर सहित (दशविध सामाचारी)
योगविंशिका	चन्द्रेशखरीयावृत्ति सहित

स्वाध्यायीओ खास पढ़ें

स्वाध्याय मार्गदर्शिका (सिलेबस) * शास्त्राभ्यासनी कला (ग्रन्थों को कैसे पढ़े ? उसकी पद्धति)

मुमुक्षु - नूतन दीक्षित - संयमी के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें

* मुनिजीवन की बालपोथी (भाग 1-2-3) * संविग्न संयमीओने नियमावली
* हवे तो मात्र ने मात्र सर्वविरती
* गुरूमाता * वंदना * शरणागति * महापंथना अझवाला
* विराट जागे छे त्यार * त्रिभुवनप्रकाश महावीर देव
* महाभिनिष्क्रमण * ऊंडा अंधारेथी * विरागनी मस्ती

} ये नौ पुस्तकें को प्रत्येक आत्मार्थीओ को अवश्य पढ़नी जैसी है...

* धन ते मुनिवरा रे... (दस विध श्रमणधर्म पर 108 कडी + विस्तृत विवेचन)
* विश्वनी आध्यात्मिक अजायबी (भाग1-2-3-4)... (450 आसपास श्रेष्ठ प्रसंगो)
* अष्टप्रवचन माता... (आठा माता उपर विस्तृत विवेचन)
* महाव्रतो... (पाँच महाव्रतो उपर विस्तृत विवेचन) * जैनशास्त्रोना चूटेला श्लोको भाग1-2 (अर्थ सहित)
* आत्मसंप्रेक्षण... (आत्माना दोषो केवी रीते जोवा? पकडवा ? अेनु विराट वर्णन)
* मुमुक्षुओने मार्गदर्शन... (दीक्षा लेवामां नडरतभूत बनता अनेक प्रश्नो नुं समाधान)
* 350 गाथानुं स्तवन (भाग 1-2-3)... (पांच ढाळ उपर विस्तुत विवेचन सहित)
* सुपात्रदान विवेक (श्राविकाओने भेटमां आपवा-साची समज आपवा मंगावी शकशो)
* आत्मकथा (विरतिदूतनी 11 आत्मकथाओनो संग्रह) * दसवैकालिकचूलिकानुं विवेचन
* शल्योद्धारा (आलोचना करवा माटे उपयोगी सूक्ष्तम अतिचार स्थानो नो संग्रह)
* धन धन्नो अणगार रे * संघ मारो भगवान * शासन प्रभावना * यशोदा (गुज.) * यशोदा
* चतुर्विधसंघने मुंझवता प्रश्नो (भाग 1 से 4) * मा ते मा * माँ यानी माँ

उववुह, थीरीकरण, वात्सल्य, धर्म परिक्षा (भाग 1 से 3), आराधक विराधक चतुर्भगी, कूपदृष्टांतविशदीकरण

विरतिदूत मासिक 1 थी 120 अंक नो आखो सेट जेने पण जोइये, ते मेळवी सके छे.

हिन्दी मे अनुवाद

* किजीए सुपात्रदान, लिजीए फल महान * यशोदा * अहो वीरम्... महावीरम्... * माँ
* साधु-साध्वीजीओ की ऐसी अजोड भक्ति क्या आपने की है? * Miracle of Aura

प्रभु महावीर महाराजा साधनाकाल के दौरान प्रायः
तेजो-पद्म-शुक्ल और परमशुक्ल लेश्यामें ही रहते ।
यह लेश्या मतलब ही आजके विज्ञानकी भाषामें
AURA J
पवित्रतम औराकी शक्ति क्या होती है ?
यह जानने के लिए यह पुस्तक जरुर पढीएगा ।
बच्चोंको-युवानोको-वडीलोको सबको यह पुस्तक हृदयसस्पर्शी
बनेगा एसा मेरा विश्वास है।

।। नमोऽस्तु तस्मै जिनशासनाय ।।

मिरेकल ऑफ ओरा सर्कल

Miracle of Aura Circle

(आपको अवाचक कर दे वैसे तीन
प्रभु महावीर के **Historical Fiction**)

:: लेखक ::
युगप्रधानाचार्यसम पूज्यपाद गुरुदेवश्री चन्द्रशेखरविजयजी
म.साहेब के शिष्य मुनि गुणहंसविजयजी...

:: अनुवादक ::
मु. शीलगुण वि.

:: प्रकाशक ::
कमल प्रकाशन ट्रस्ट
102-अे, चंदनबाला कोम्पलेक्स,
आनंदनगर पोस्ट ओफिस के सामने,
भठ्ठा, पालडी, अहमदाबाद-7.
टेलि. 26605355

:: दिव्याशिष ::

सिद्धान्तमहोदधि, सच्चारित्रचूडामणि,
स्व. पूज्यपाद आ. भगवंत श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज के
विनेय स्व. पूज्यपाद पं.प्रवर श्री चंद्रशेखर विजयजी म. साहेब

:: सौजन्य ::

प.पू.आ.भ. श्री जयानंदसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से तथा

प.पू. मुनिराज श्री गुणहंसविजयजी म.सा. के चेन्नई चातुर्मास के उपलक्ष में
श्रीमती सुखीदेवी-गजराजजी नागौत्रा सोलंकी के जीवित महोत्सव निमित्ते

श्रीमती लक्ष्मीदेवी रतनचन्दजी नागौत्रा सोलंकी परिवार

रतनाजीवाला, साँथू - चेन्नई

:: प्राप्तिस्थान ::

हितेशभाई गाला

B-17, तृप्ति सोसायटी, हनुमान रोड, विले पार्ले (पूर्व), मुंबई-400 057.
मो. 98209 28457

आशिषभाई महेता

101, रोयल हेरीटेज, पहला माला, सरगम शोपींग सेन्टर के पास, उमरा-सुरत. (गुजरात)
मो. 93745 12259

दीपेशभाई दीक्षित

B-2, अमर एपार्टमेन्ट, डीवाइन लाईफ स्कूल के सामने,
बेरेज रोड, वासणा, अहमदाबाद. मो. 094286 08279

प्रथम हिन्दी संस्करण : 3000 (भ. महावीर जन्म कल्याणक 2072)

मूल्य : रु. २३/-

:: Typesetting By ::

पार्श्व ओफसेट - क्रिएटीव प्रकाशन

'विनय', 2/5, जागनाथ कोर्नर, नंदवाणा ब्राह्मण बोर्डींग के पास,
डॉ. याज्ञिक रोड, राजकोट - 360 001. मो. 94269 72609

:: Printed By ::

जगावत प्रिन्टर्स

39, नाट्टु पिल्लैयार कोईल स्ट्रीट, चेन्नई-1. मो. 9884814905 / 14901

प्रस्तावना

1. शुभलेश्याकी = Aura की ताकत कितनी ?

2. प्रायो भावाद् भावप्रसूति:

3. सिद्धि: परार्थता

4. सिद्धेश्चोत्तरकार्य: विनियोग:

5. विन विनियोग न संभवे रे, परने धर्मनो योग रे...

ऐसे ऐसे अनेक शास्त्रपाठो की सच्ची समझ प्राप्त हो, इसलिए महावीर महाराजा के साधनाकालको लक्ष्य में रखकर तीन काल्पनिक कथाएँ इस पुस्तक में वर्णित करने में आई है ।

'यह तो कल्पना है' ऐसे सोचने के बदले **'यह सब वास्तविकता में हो सकता है'** ऐसी प्रभु की ताकत को नज़र के सामने लाना....

बहुत रूचि जन्मेगी,

बहुत असर होगी ।

वीतराग की आज्ञा विरूद्ध कुछ भी लेखन हुआ हो तो मिच्छामि दुक्कडं !!!

युगप्रधानाचार्यसम पूज्य पंन्यास गुरुदेव
श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.साहेब का शिष्य
मुनि गुणहंसविजय

अनुवादक का कथन

''म.सा. ! क्या पुस्तक है ! क्या पुस्तक है ।'' कहते हुए एक श्रावक ने उपाश्रय में प्रवेश किया । गुरुमहाराज ने पूछा, ''कौन-सी ?'' ।

उन्होंने प्रत्युत्तर दिया, **"Miracle of Aura Circle"** ''साहेबजी! मैंने बिना झोके खाएँ कल रात को ही यह संपूर्ण पुस्तक पढ़ ली।''

बस यही शब्द मुझे इस पुस्तक को अनुवादित करने की प्रेरणा दे रहे । गुजराती वाचकवर्ग को यदि इतनी रूचि इस पुस्तक से जगती हो तो क्यों हम हिन्दीभाषीयों को इससे वंचित रखे ।

और, दूसरा कारण !!!

हमारी २०७२ साल की चैत्री ओली चैन्नई साहुकार पेठ संघ में नक्की हुई ।

वहाँ चैत्र सुद १३ का बहुत बड़ा वरघोडा (चारो फिरकोका) भगवान के **जन्म कल्याणक** के उपलक्ष्य में निकलता है । बस !!! इसी अवसर पर इस पुस्तक की भी अनुवादित आवृत्ति (अभी फिलहाल गुजराती में १०-१५०००) हमारे शासन समुद्र में समर्पित हो ऐसी भावना से...

अनुवादक
गुरुगुणहंसचरणरज
मु. शीलगुण वि.
महासुद ७, कुष्टगी, कर्णाटक

१. प्रायो भावाद् भावप्रसूतिः

''भगवान पार्श्वनाथ के शासनरुपी नभोमंडल में सूर्य के समान दीपते पूज्यपाद आचार्यदेव श्री सिद्धिभद्रसूरिजी के चरणकमल में कोटिशः वंदना !

उपस्थित श्रमणवृंद तथा श्रमणीवृंद को मेरी भावभरी वंदना !

साकेतनगरी के श्रावक-श्राविकाओ को मेरा प्रणाम !

आप सभी को आश्चर्य तो होगा ही कि क्यों साकेतनगरी के महाजन ने आज साकेतनगरी के सभी के सभी जैन गृहस्थो को यहाँ सभागृह में इकट्ठे होने का फरमान किया ?

अचानक ऐसा क्या बन गया कि धोमधखते बैशाख महिने की धूप में इस तरह दोपहर के ढ़ाई बजे सभी को यहाँ संघठित करने में आया है ?

और उसमें, आचार्यदेव और साधु-साध्वीजीओं को भी किस कारण से यहाँ उपस्थित करने में आया है ?

आपके इस आश्चर्य को दूर करने का कार्य मुझे करना है ।

आनेवाली एक भयानक आफत का निवारण कैसे करना ? इसका विचार करने के लिए ही यहाँ प्रत्येक जैनजनको उपस्थित करने में आया है ।

परंतु वह भावि-आपत्ति क्या है ? यही बात मुझे आप सभी को समझानी है ।

आप सभी शांत चित्त से मेरी बात सुनोगे ऐसी विनंति करता हूँ ।''

महाजन के अग्रणी, पार्श्वनाथप्रभु के शासन के उत्तम कोटि के आराधक जीव, ६० की उमर को पार करने के बावजूद भी शारीरिक और मानसिक बल से बलवान **शेठश्री कीर्तिधनजी** साकेत नगरी के २५००-३००० जैनजनों के सामने वक्तव्य दे रहे थे ।

मुँह भारी उदासीनता से ढँका हुआ था । उच्च स्थान पर बिराजमान आचार्यदेव के मुँह पर भी चिंता की रेखाएँ स्पष्ट रूप से उपसी हुई दिख रही थी ।

प्रासंगिक निवेदन से साकेत की जैनप्रजा भी विचार में तो गिर ही गई थी कि ''नक्की मामला अतिगंभीर है ।''

कीर्तिधनशेठ : ''दो दिन पहले ही नगर के राजवी **प्रणयर्केतुने** जैन महाजन को मिलने के लिए राजमहल में बुलाया था । हम सभी समयानुसार पहुँच गए । राजवी ने शुरुआत में तो मीठाश से थोडी बातें की, परंतु उसके पश्चात् गंभीर होकर उन्होंने आवेदन दिया ।

''महाजन ! आप तो जानते ही हो कि आजकल शत्रु राजाओं का उपद्रव बहुत बढ़ गया है । बारबार पड़ोशी राजा अचानक तूट पडते है । हालाँकि हमारा सैन्य सावध है और समर्थ है । इसलिए अभी तक कोई बड़ी तकलीफ हुई नहीं है। परंतु इस भय का प्रतिकार करने के लिए हमें कुछ तो करना ही होगा ।

मैंने दो बातों का विचार किया है । एक तो सैन्य बढ़ाना, और उन्हें ज्यादा वेतनादि देकर उत्साहित करना । और दूसरी बात यह कि हमारा किल्ला नए तौर से एकदम मजबुत तैयार करना । हमारा किल्ला बहुत पुराना हो जाने से जर्जरित हो गया है । यह कोई भी हिसाब से अभी चल सकता नहीं है, मैं जितना हो सके उतना जल्दी यह काम निपटाना चाहता हूँ ।

यह दोनों कार्यो के लिए धन की आवश्यकता बहुत ही रहेगी । राजभंडार भरपूर है, इसमें कोई शंका नही हैं, परंतु इन दोनों कार्यो के लिए यदि राजभंडारो का उपयोग होगा, तो वह आधा खाली हो जाए तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं । इसलिए मैंने सोचा है कि यह कार्य प्रजा के सिर पर डालकर ही पार करना । ऐसे भी प्रजा की रक्षा के लिए ही यह दो कार्य है, इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है । इसलिए प्रजा को ही यह जवाबदारी वहन करनी चाहिए ।

इसलिए अलग–अलग कोम के अग्रणीओं को बुलाकर सबके पास मैंने धन की माँग की है । आपको भी इसलिए ही बुलाया है । इसलिए आपको (चलण रूपिये का नहीं परंतु सोनामहोर वि.) चार करोड़ देने होगे । यह मेरी विनंती है, परंतु

यह आदेश ही समझना ।''

राजवी की बात सुनकर हम सब चौंक उठे । हमने जवाब दिया कि, ''राजन् ! आपकी बात एकदम सच्ची है, परंतु चार करोड़ जितनी मातबर रकम का प्रदान करना जैन समाज के लिए कठिन है । साकेत नगरी के जैन श्रावको को खाने-पीने में कोई दिक्कत नही हैं, उसकी ना नही है, परंतु वे श्रीमंत तो नही ही है । खिंच-खिंचकर, घीस जाए तो भी हम ३०-४० लाख रुपिये मुश्किल से इकट्ठे कर सकेंगे । परंतु इसमें भी सभी को बोझ लगे वैसी परिस्थिति है । तो रु. ४ करोड़ हम कैसे दे पाएँगे ?

आप कृपा करकर जैन संघ को ३०-४० लाख रु. जितनी ही जिम्मेदारी दीजीए । ऐसी हमारी नम्र विनंती है ।''

परंतु हमारी बात राजा को किसी भी तरह पिगला न सकी । उन्होंने मुँह मचकोडा । सख्त होकर हमको कहा कि, ''जो आते है, वे सभी ऐसा ही कहते है । यदि मैं दया करने जाउ, तो यह राज्य कैसे चलेगा ? इसलिए इस कार्य में किसी भी प्रकार की बाँधछोड़ नहीं होगी । जैनसंघ को ४ करोड़ देने ही होगे । मैं तुमको १६-२० दिन की मुदत देता हूँ । तब तक आपको यह रकम राजभंडार में जमा कर देनी होगी । यदि ऐसा नहीं होगा, तो परिणाम अच्छा नहीं होगा । जैनसंघ को यदि साकेतनगर में रहना हो, तो यह बात माननी ही होगी...

बस...

मुझे ज्यादा कुछ सुनना नही है । आप जा सकते हो, द्वार खुल्ला है...''

सत्तावादी सूर में राजा ने लगभग हमको धमकी ही दी और वहाँ से बिदा किया ।

अभी क्या करना ? साकेत की जैनप्रजा की सामान्य-मध्यम स्थिति है, यह सभी ही जानते है । चार करोड़ हमारे लिए लगभग नामुमकीन है । शायद घरबार बेंच दे, तो मुश्कील से यह रकम पूर्ण होगी । परंतु उसके पश्चात् हम सभी रस्ते में

रखडते हुए भिखारी के जैसे हो जाएगे ।

यही सभी बातें हमने आचार्यदेव सिद्धिभद्रसूरिजी को की । वे भी द्विधा में गिर गए है । उन्होंने ही हमें आदेश किया है कि, ''साकेत के प्रत्येक जैन को इकट्ठा करकर यह बात बतलाओ । सभी के साथ में विचार-विमर्श करेंगे तो कोई मार्ग जरुर निकलेगा ।''

इसलिए ही आज त्वरीत ही इस सभागृह में आप सभी को संघठित करने में आया है ।

अभी बोलिए, हमे क्या करना है ? राजा किसी भी तरह समझे वैसी परिस्थिति नहीं है । और हमारे पास उसकी इच्छापूर्ण करने की शक्ति नहीं है ।''

कीर्तिधन शेठने एक गहरा नि:श्वास छोडा और मौन धारण किया ।

संपूर्ण सभा शांत हो गई । छोटी-सी टाचनी गिरे तो भी आवाज़ सुनाई दे इतनी शांति प्रसर गई । सभी के सिर बहेर मार गए । साकेतनगरी को छोड़कर सभी जैन स्थलांतर करे यह शक्य है ? और वैसा करे तो भी घरबार के सिवा दूसरे देशमें जाकर जीना कैसे ? इसलिए ही यह शक्य नहीं लग रहा था ।

पाँचेक मिनिट सभी अलग-अलग प्रकार के विचार के दौर पर चड़े, तो भी कोई उपाय सुझा नहिं ।

अंत में हस्तिवीर्य नाम के एक चतुर युवानने खडे होकर एक उपाय बताया। उसने कहा कि, ''हम सभी यह बात क्यों भूल गए कि हमारी जैनप्रजा में एक मानव अबजो रुपियों का अधिपति है । वह है शेठ **अर्हद्दास** ! हम सभी उन्हें पहचानते ही है । उदारता में वे अजोड है । जैनसंघ के लिए उन्होंने हमेशा ही बहुत उदारता बताई है ।

अलबत्त यह खेद की बात है कि चार महिने पहले ही उन्होंने इस जगत में से विदाय ली है । हमारे बीच वे उपस्थित नही है । परंतु उससे क्या ? उनका स्वत: का पुत्र शेठ **जिनबंधु** तो है ना ? नगर के अंत में रही हुई कितनी बड़ी हवेली का वह मालिक है । देश-विदेश में उसका धंधा कितना विस्तृत है । रे ! केवल साकेत

में ही उसकी चार बड़ी दुकाने चल रही है ।

आप इस जिनबंधु शेठ को क्यों भूल गए ? वह चाहे तो अकेले ही चार करोड़ रु. दे सकते है । आपने उन्हें यहाँ क्यों नहीं बुलाया है ? उनके समक्ष ही यह बात रजु कीजीए ना !''

युवान हस्तिवीर्य की यह बात सुनकर संपूर्ण सभा के मुख पर एक चमक आई । परंतु महाजन की उदासीनता तो यथावत् रही ।

शेठ कीर्तिधनने फिर से एकबार विस्तृत निवेदन करने का प्रारंभ किया ।

उन्होंने कहा कि, ''क्या आप ऐसा मानते हो कि जभी ऐसा गंभीर मामला उपस्थित हुआ हो, तभी हम आसान-सरल उपाय को भूल जाए ?

हस्तिवीर्य ! तू अर्हद्दास को पहचानता है, परंतु जिनबंधु उसके लडके को तु पहचान नहीं पाया है । सच कहुं तो हम भी तीन-चार महिनो के पहले ही उसके सच्चे स्वरुप को पहचान सके है । उसकी कृपणता बेहद है । पिताजी के पास से अबजो रुपियों का भंडार प्राप्त होने के बावजूद भी वह एक द्रम भी खरचने के लिए तैयार नहीं है । हमें तो ऐसा लगता है कि उसके जैसा भारी कर्मवान् जीव इस साकेतनगरी में दूसरा कोई नहीं होगा ।

सुनो ! उसकी विचित्र चेष्टाओं को !

उनके पिता शेठ अर्हद्दास तो महाजन के नाक समान थे । महाजन के सेवक बनकर जीते थे । कभी भी किसी भी प्रकार का कोई काम आ जाए, तो आधी रकम तो वे खुद ही अकेले दे देते थे । बाकी की आधी रकम हम सभी इकट्ठे होकर पूर्ण करते थे । तो भी उन्होंने कभी अहंकार का प्रदर्शन किया नहीं था । वे हमेशा ऐसा ही कहते कि, ''मुझे संघभक्ति का बहुत लाभ मिलता है । **संघ मेरा उपकारी है** । जभी भी जरुरत पड़े तो इस सेवक को याद करना ।''

संघ के प्रति उनका वात्सल्य अमाप था । इसलिए ही तो हर वर्ष वे एकबार समस्त जैनसंघ का स्वामिवात्सल्य करते थे । रु. १ लाख का खर्च करकर उत्कृष्ट

द्रव्यो से भक्ति करते थे । संघ के छोटे-से छोटे व्यक्ति का भी पाँव दूध से धोकर, सिर पर तिलक लगाकर श्रीफल देकर उसका सन्मान करते थे ।

यह सभी बातो से कौन अनजान है ?

परंतु ४ महिनों के पहले ही अचानक वे मृत्यु को वरे...

इस वर्ष का उनका स्वामिवात्सल्य बाकी था । मृत्यु के दो दिन पहले ही उन्होंने हमें स्वामिवात्सल्य का आयोजन करने की बात की थी । हमारी इच्छा थी कि उनकी भावना पूर्ण की जाए ।

जैन महाजन जिनबंधु की राजमहल जैसी हवेली में गया । पिता के मृत्यु के लिए आश्वासन दिया । पिताने किए हुए सुकृतो को याद करवाकर बहुत अनुमोदना की... परंतु कौन जाने क्यों, उसके मुख पर कोई विशेष हावभाव दिखाई नहीं दिए... रुक्षता ही दिखाई दी ।

हम समझे कि, ''पिताजी की मृत्यु की वेदना के कारण से वह उदास होगा ।'' अंत में हमने मुख्य बात की, ''शेठ अर्हद्दास हर वर्ष स्वामिवात्सल्य करते थे । मृत्यु के दो दिन पूर्व ही उन्होंने इस वर्ष के स्वामिवात्सल्य का आयोजन करने की बात हमे बताई थी । योगानुयोग वे तो विदाय ले चुके । उनकी अंतिम इच्छा को पूर्ण करनी यह हमारी जिम्मेदारी है । तो बोलो ! हम कभी संघजिमन रखेंगे ? क्या क्या बनाना है ? लगभग लाख मुद्राओ का खर्च हर साल होता है ।''

'१ लाख मुद्रा का खर्च' शब्दो को सुनते ही जिनबंधु शेठ चौंक गए । और उन्होंने आघातजनक शब्दो का उच्चारण किया । ''देखो महाजन ! फोगट के खर्चे मुझे अच्छे नहीं लगते । मेरे पिताजी क्या करते थे, वह उनका विषय है । आप सभी उनकी प्रशंसा कर-करकर उन्हें उपर चडाते थे, इसलिए भोले पिताजी खुशी-खुशी में पैसे खर्च देते थे । परंतु, मैं ऐसा मुर्ख नहीं हूँ । 'धन कहाँ खर्चना ? कहाँ नहीं ?' इसका विवेक मेरे पास है । किसी के चडाने से मैं चड़ जाउ यह बात शक्य नहीं है ।

अभी रही संघजिमन की बात ! क्या साकेतनगरी के जैनबंधु भूखे मर रहे

है ? उन्हें दो बार खाने को नहीं मिलता ? कि उन्हें हमें खिलाना पड़े ? हा ! ऐसे कोई भूखे रह जाते जैन हो, तो उन्हें खाना खिलवाने की व्यवस्था मैं करूँगा । बाकी हररोज पेट भरकर खानेवालों को खिलाने में तो धर्म कैसा है ?

'वे सभी जैन है, इसलिए उन्हें खिलाने में धरम !' ऐसा तो मुग्धजीव ही मानते है, मानव के तौर पर सभी समान है । जैन होने से कुछ भी विशेष फरक पड़ता नही है । इसलिए जिमन मोकुफ ही समझना ।''

हम सभी अवाचक ही रह गए । ''जिनबंधु ! हर साल तुम्हारे पिताजी संघजिमन करवाते थे । इस साल तो उनका मृत्यु हुआ है, इसलिए तो खास संघजिमन कराना चाहिए । नहीं तो लोगो में तुम्हारा ही खराब दिखाई देगा कि 'लडके ने बाप का धर्म सँभाला नहीं ।'' ऐसा हमने उसे कहा ।

जिनबंधुने कहा, ''ऐसे अपयश से मैं डरता नही हूँ । जो सच्चा है, उसे ही मैं करता हूँ । लोगों के मुँह को हम सी नहीं सकते ।''

भारपूर्ण हृदय से हम वापस लौट आए । अर्हद्दास का खराब दिखाई दे या उनके लड़के का खराब दिखाई दे यह महाजन को मंजुर नहीं था । ऐसे भी तो उन्होंने श्रीसंघ के लिए बहुत काम तो किए ही थे । हमने सोचा कि, ''जिनबंधु अभी नया है, धर्म के मार्ग पर जुडा नहीं है । उमर छोटी है । इसलिए ऐसा विचार करता है, भले... वह धीरे-धीरे सुधरेगा । परंतु हमें अर्हद्दास के नाम से संघजिमन तो आयोजित करना ही चाहिए । यह प्रसंग होगा, इसलिए जिनबंधु स्वत: ही उसका खर्च भर देगा...''

और हमने संघजिमन आयोजित किया, सभी को आमंत्रण भिजवाया ।

यह समाचार जिनबंधु को मिले । उसने महाजन को खुद के घर पर बुलाकर धमका दिया । ''आप सभी वडील हो, इसलिए ज्यादा बोल नहीं सकता । परंतु समझ लेना कि दूसरे के पैसो पर यह तागडधिन्ना करने की रीत मैं हरगीझ चला नहीं सकता । आप सभी को मौज करने के सिवा कुछ सुझता ही नहीं ?

मैंने आपको स्वामिवात्सल्य की साफ ना कही थी । तो भी आपने मेरी बात को ध्यान में रखे बिना ही मेरे पिताजी के नाम से संघजिमन की जाहेरात भी कर दी । वह सत्ता आपको किसने दी ? आप महाजन हो, इसलिए चाहे वैसा व्यवहार कर सकते हो ? नहीं । समझ लो कि मैं एक पैसा भी देनेवाला नहीं हूँ । आपको मेरी जितनी बदनामी करनी हो, उतनी आप कर सकते हो । मुझे कुछ भी फरक पड़ता नहीं है ।''

हम फिक्के मुँह से वापस फिरे । हमने अंदर अंदर जैसे तैसे करके एक लाख जमा करकर स्वामिवात्सल्य कर दिया । परंतु हमारी आसमंजस्य का पार नहीं रहा। अभी तक के सभी कार्य शेठ अर्हद्दास के ५०% सहायता के आधार से होते थे । अभी वह सहायता बंध होनेवाली थी । 'संघ के कार्य कैसे होगे ?' यह समस्या हमारी थी । जैन समाज में हाल में शेठ जिनबंधु के अलावा कोई भी श्रीमंत नहीं था । और वह तो एक कोडी भी खर्चने के लिए तैयार नहीं था ।

इस बात को महिना बीत गया ।

और पांजरापोल का नया कार्य महाजन के सिर पर आया । साकेतनगरी के बहार जैन महाजन एक पांजरापोल की व्यवस्था सँभालते है । दूध नहीं देने वाले, अबोल–रोगी–वृद्ध पशुओं की सार–सँभाल वहाँ होती है । यह बात सभी को पता ही है। जैनसंघ की ही यह विशेषता है कि 'पशुओं के पास से लाभ होने की कोई भी अपेक्षा को रखे बिना ही उन पशुओं की सार–सँभाल करना । जीवदया, अनुकंपा यह हमारे रग–रग में फेला हुआ धर्म है ।'

परंतु घासचारा–वेतन आदि का खर्च तो लगता ही है ना ? ५०० पशुओ को सँभालनेवाली पांजरापोल का वार्षिक खर्च तकरीबन ५–६ लाख होता है । हर साल ४ लाख तो अर्हद्दास शेठ की ओर से ही मिल जाते । बाकी के ३–४ लाख साकेत के मध्यमवर्ग के होने के बावजूद भी धर्मानुरागी श्रावको के पास से इकट्ठे हो जाते थे ।

परंतु अभी क्या किया जाए ? अर्हद्दास तो विदाय को वरे । जिनबंधु के

पास से रकम मिलने की कोई आशा नहीं थी । माँगने जाने की हिंमत भी नहीं थी ।

परंतु... 'अबोल पशुओं का पुण्य काम कर लेगा... हमारी निर्मल भावना शायद असर कर जाएगी... जिनबंधुको जिमन फोगट खर्च लगने से रुचा नहीं था, परंतु पशुओं की रक्षा में कोई फोगट खर्च नहीं है । जिनबंधुने भी भूखे लोगों को भोजन करवाने का तो कहा ही था...'' ऐसे ऐसे विचारों के साथ हमने फिर से एकबार जिनबंधु की हवेली में पैर दिया ।

''आओ !!!'' खडे हुए बिना जिनबंधुने महाजन को लुक्खा आवकार दिया। यह हमारा अपमान ही था, परंतु उसे भी हमने गले से उतार लिया, अबोल पशुओ के लिए !

''बोलो, क्या काम है ?''

''जिनबंधु ! बात ऐसी है कि पांजरापोल के लिए वार्षिक टीप करने का समय आ गया है । हर साल तुम्हारे पिताजी ४ लाख का दान देते थे । वे तो हमें सामने से याद करवाते । हमे देर हो जाए, तो कहते कि ''पांजरापोल के लिए क्यों फंड नहीं करते ? लीजीए, यह मेरा दान ले लीजीए । और जल्दी काम चालु कीजीए ।''

इस बात का तुम्हें तो शायद ध्यान नहीं होगा । इसलिए हम सामने से ही आए है । जीवदया तो हमारा मूल स्तंभ है । यह कार्य तो तुमे अच्छा लगेगा ही, ऐसी हमारी आशा है...।''

अभी तो हमारे शब्द बराबर पूर्ण भी नहीं हुए थे कि वहा ही जिनबंधुने खुद की चाकु जैसी जीभ से हमारे उल्लास पर घाव मारने चालु कर दिए । ''आप मुझे ऐसा बताईए कि पशु कौन बनता है ? जिसने पूर्वभवों में पाप किए होते है, वही ना? इसलिए यह बात तो तय हो गई कि ये पशु पूर्वभव में पापी थे । शायद कसाई–हत्यारे होंगे । इन किए हुए पापो के कारण से ही वे दु:खी बने है, पशु बने है । तो क्या हमें इन कसाईयों को बचाना चाहिए ? उनका पेट भरना चाहिए ?

और वे खुद के पापकर्मो को भुगत रहे है, उसमें हमें बीच में आने की क्या जरुरत है ? मैं धर्म को शायद ज्यादा जानता नहीं हूँ, परंतु मुझे इतना तो पता ही है कि अनुकंपा मोक्ष नहीं देती, वह तो स्वर्गादि देती है । मोक्ष के लिए तो रत्नत्रयी की आराधना करनी पडती है ।

इसलिए ही इन कार्यो में मुझे रूचि नहीं है । मेरी तो आपको भी सलाह है कि ऐसे बिना काम के कार्यो में समय को पसार किए बिना रत्नत्रयी की आराधना ही करो ! हर साल ऐसे भीख माँगने में आपको शरम नहीं आती ? यह ही आश्चर्य है !

दूसरा कोई काम हो, तो बोलो । मैं जरुर सहाय करूँगा । परंतु इसमें तो मेरा अंतरात्मा ना बोल रहा है । हा ! हम इसमें धन का खर्च करे, और उसके बदले में पशु यदि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनेवाले होते, तो तो अभी भी बराबर है । परंतु वे तो सब कुछ खा जाएँगे, और कुछ भी धर्म तो पाएँगे नहीं । उन्हें खिलवाने से लाभ क्या ?''

उसकी भाषा की कर्कशता को देखकर हम जवाब दिए बिना ही वापस लौट आए । पांजरापोल का काम हमने विवशता से कम करने का तय किया । दूसरा कोई उपाय हमारे पास था नहीं । उसकी दलीलो के जवाब तो हमारे पास मुँह-तोड़ थे, शास्त्रानुसारी थे, परंतु वहाँ हमको स्पष्टता करना उचित लगा नहीं । हम वापस लौटे ।

और अंत में, एक महिने पहले ही बना हुआ एक प्रसंग !

हमारा मुख्य जिनालय अतिप्राचीन है, जर्जरित है । सेंकडो चुहें वहाँ लटार लगाते रहते है । मेदनी बढ़ जाने से जिनालय छोटा पड रहा है । शायद कभी कुछ तूट जाए तो आश्चर्य नहीं...

यह सभी बातों को सोचते हुए महाजन को विचार आया कि ''इसका जीर्णोद्धार करना बहुत जरुरी है ।'' हमारी वस्ती के अनुसार जिस तरह का जिनालय

बनाना पडे, उसका अंदाजित खर्च लगभग अढी-तीन करोड़ तक पहुँच जाएगा ऐसा हमारा सभी का अंदाज था । इतनी बड़ी रकम तो साकेत के श्रावक पूर्ण नहीं कर सकेगे, यह बात तो स्पष्ट ही थी । एक मात्र जिनबंधु ही सक्षम था । वह दो-अढी करोड़ दे, तो बाकी के ५० लाख तो जैसे तैसे करकर... थोड़े घिसकर भी... घर घर फिरकर भी इकट्ठा कर ले ।

परंतु जिनबंधु एक भी कोडी नहीं देगा ऐसा हमे लग रहा था ।

तो भी थोड़े महाजन सभ्यो का यह भी अभिप्राय था कि ''स्वामिवात्सल्य का कार्य हमारे सब के लिए था, पांजरापोल का काम पशुओ के लिए था । हमारा और पशुओ का पुण्य कम हो यह संभवित है । इसलिए उसमें सफलता न भी मिले। परंतु यह देरासर का जीर्णोद्धार का कार्य तो भगवान का है । पार्श्व प्रभु की महिमा अपरंपार है । जिनबंधु भले न कैसा भी हो, परंतु प्रभु के लिए तो उसको सद्भाव होगा ही ना ? इसलिए उसके पास जाकर यह योजना रखनी तो चाहिए ही । ऐसे निराश होने से कुछ भी नहीं होगा ।''

और,

फिर से एकबार महाजन ने जिनबंधु की हवेली के द्वार पर दस्तक दिया ।

इस बार तो हमको देखकर ही जिनबंधुने खुद का नाक मचकोडा ।

''यह सभी पैसे माँगने के लिए आए है'' ऐसा सोचकर उसने सीधा प्रश्न ही पूछा ।

''बोलो, महाजन ! अभी कौन-सी मदद माँगने आए हो ? मुझे कितनी भीख देनी है ?''

कटाक्ष भरपूर इन शब्दों से हम सभी को बहुत आघात लगा । हमने कभी भी हमारे लिए पैसे माँगे नहीं है । तो भी हमारे साथ भिखारी के जैसा आचरण क्यों?

महामुसीबत से क्षमा धारण करके हमने वहाँ सभी बातों को रजु की। प्राचीन मुख्य देरासर की सभी परिस्थिति उसे समझाई ।

''तुम्हारे पास दो-ढ़ाई करोड़ रुपयों की अपेक्षा है । सेंकडो वर्षो तक चलनेवाला यह उत्कृष्ट कार्य है । हजारो लोग सम्यकत्वादि को पाएँगे ।'' महामुश्किल से तोतलाती हुई जीभ से हम इतना बोल पाएँ ।

हमारी धारणा के अनुसार ही जिनबंधु की काली सरस्वती (खराब शब्द) हमें सुननी पड़ी । उसने कहा कि, ''देखो ! हमें ऐसा लग रहा है कि यदि इस जिनालय का जीर्णोद्धार नहीं किया जाए, तो वह तूट जाएगा... परंतु ऐसे दिखते हुए देरासर भी ४-५ साल तो आसानी से टीक ही जाते है । भगवान का काम है, इसलिए इसमें मुझे 'ना' का प्रयोग करना ही नहीं होता, परंतु इसमें इतनी जल्दबाजी करने की जरुरत क्या है ? पांच सालों के बाद ही यह कार्य संपन्न करना चाहिए । इसका फायदा यह होगा है कि नया जिनालय पांच साल देरी से बनने से वह भविष्य में पांच साल ज्यादा टीकेगा ।

चूहे तो सालों से फिर ही रहे है, वे कहाँ हमें परेशान कर रहे है ?

हाँ ! भीड हो रही है, जगह छोटी पड़ रही है, यह बात तो सच है, परंतु ऐसा कभी हुआ है... कि भीड के कारण से व्यक्ति पूजा न कर पाया हो ? नहीं रे नहीं ! सभी लोग जैसा-तैसा करके भी पूजा-भक्ति तो कर ही लेते है । किसी का भी धर्म रूक नहीं गया है । हां ! थोडी सी राह देखनी पडती है, परंतु वह तो अच्छा है ना ! प्रभुपूजा के लिए राह देखनी पडे, यह तो सद्भाग्य कहलाता है । उतने समय में संसार के पाप अटकते है । इसलिए जीर्णोद्धार का कार्य पाँच सालों के बाद करना ।

और हा ! उस अवसर पें भी दो-ढ़ाई करोड की रकम की अपेक्षा तो मत ही रखना । यह तो बहुत बड़ी रकम कहलाती है । मेरी इतनी बड़ी भावना नही है। एक-दो लाख रुपियों की मदद करूँगा, उसमें कोई तकलीफ नहीं है ।

बोलो, बराबर है ना ?''

हम प्रत्युत्तर दिए बिना ही सीधे आचार्य सिद्धिभद्रसूरिजी के पास आए,

उनको गतवृत्तांत का बयान किया । ''क्या किया जाए?'' उनके पास सलाह माँगी।

तभी आचार्यदेवने क्या उत्तर दिया, यह आप जानते हो ?

गौर से सुनो !!!

आचार्यदेवने हमे कहा कि, ''जिनबंधु का अनुभव तो हमे भी है ही । हमारे साधु उसके वहाँ गोचरी वहोरने जब जाते है, तभी वह बहुत कंजुसाई का प्रदर्शन करता है । एक-दो रोटीयाँ वहोराता है, विगई का तो क्या कहना ! किसी भी प्रकार का आग्रह वह करता नहीं है ।

एकबार हमारे एक साधु को विशिष्ट तप का पारणा था । इसलिए घी आदि उत्तम द्रव्यो को वापरना जरुरी था । साधुओं को ऐसा लगा कि, 'जिनबंधु श्रीमंत है, भले हररोज न बहोराए परंतु कारण बताकर याचना करने पर तो वह भक्ति से वहोराएगा ना !'

इसलिए दो साधु वहाँ वहोरने गए । योगानुयोग वहाँ जिनबंधु उपस्थित नही था । उसका रसोईया वहाँ हाजर था । उसके भाव अच्छे थे, परंतु दो रोटीयाँ वहोराकर वह भी रुक गया ।

''दूसरा क्या है ?'' इस प्रकार से साधु ने दो-चार बार पृच्छा की, परंतु रसोईयेने दूसरी किसी भी वस्तु की विनंती नहीं की ।

''घी है ? हमारे एक साधु को पारणा है, इसलिए घी की आवश्यकता है...'' साधु ने स्पष्ट शब्दों में याचना की । तभी रसोईयेने कहा कि, ''महाराज साहेब ! घी तो है, परंतु हमारे शेठ ने हमें इन सभी वस्तुओं को वहोराने की स्पष्ट 'ना' कही है । वह शेठ कहता है कि, ''साधु जितना अधिक वापरता है, अधिक अच्छी वस्तु वापरता है... उतना ज्यादा राग उसे होता है । उनकी मोक्षसाधना में आफत आती है । हमें तो साधु की साधना में सहाय करनी चाहिए, विघ्न नहीं । इसलिए साधुओं को कम वहोराना चाहिए और घी-दूध आदि विगईया तो बिलकुल नहीं । सादी वस्तु भी अल्प ही वहोरानी । कोई माँगे तो भी 'ना' कह देना चाहिए...''

रसोईये की बात सुनकर साधुओ को आश्चर्य हुआ । जिनबंधु की मानसिक दशा इतने स्तर तक हलकी है ! साधुओ को अल्प घी वहोराने के लिए भी वह तैयार नही है... अरेरे ! हाय रब्बा !

साधुओ ने उस घर को छोडकर अन्य योग्य लगते घरो में से घी को प्राप्त कर चला दिया ।

इसके पश्चात् तो शाम को लपते-छुपते हुए वह रसोईया हमको (आचार्य देव को) मिलने आया और उसने मुझे कहा कि, ''गुरुजी ! मुझे आपके साधु भगवंतो को घी वहोराए बिना बहार जाने देना पडा । मुझे क्षमा करना । परंतु मैं लाचार हूँ । नौकर हूँ । मेरा शेठ कंजुस शिरोमणी है । वह तो मुझे भी रखने के लिए तैयार नही है, क्योंकि पगार देना पडता है ना ? परंतु मेरी शेठाणी की तबीयत अच्छी नही है । रसोई आदि कर नही सकती । इसलिए शेठाणी के अति आग्रह से मुझे रसोईये के तौर पर नियुक्त किया गया है ।

परंतु गुरुजी ! वे स्वत: अच्छा खाते नहीं, और हमें भी अच्छा खाने देते नहीं । मैं भी लाचारी से मारा हुआ वहाँ रह रहा हूँ । दूसरी जगह नौकरी मिल नही रही, तो क्या करूं ?

मैंने आपके साधुओ को घी की ना कही... मुझे बहुत दु:ख हुआ । मुझे क्षमा करो ।'' और रसोईया जोर-जोर से रोने लगा । मैंने उसे आश्वासन देकर विदा किया ।

परंतु महाजन ! जो व्यक्ति पंचमहाव्रतधारी उत्तम कोटि के साधुभगवंतो को भी घी जैसी वस्तु भी वहोराने के लिए तैयार न हो, वह तुमे जिनालय के लिए अढी करोड रु. कहाँ से देगा ? दिन में आकाश से तारे तोड लाने जैसा यह कार्य है ।''

यह है हमारे आचार्यदेव का जिनबंधु के लिए अभिप्राय !

नगरवासी जैनो ! हस्तिवीर्य ! अभी तु ही मुझे बता कि जिनबंधु हमें राजा

के आदेश के अनुसार चार करोड देने के लिए कैसे तैयार होगा ? वह तो कहेगा कि, ''यह रकम तो संपूर्ण जैनसंघ को अर्पण करनी है, मेरे अकेले की जिम्मेदारी नही है । सभी के हिस्से में जो रकम आएगी, वह ही रकम मैं दूँगा ।''

हा ! हम राजा को यह बात कर सकते है कि, ''जिनबंधु के पास से ही आप संपूर्ण रकम ले लो ।'' परंतु ऐसा कहना क्या योग्य है ? क्या राजा हमारी बात को मानेगा ? यदि राजा ऐसा ही कह देगा कि, ''यह सारी जिम्मेदारी तुम्हारी है । तुम चार करोड़ लेकर आओ । दूसरी सभी बातों से मुझे कोई लेना-देना नही है ।'' तो हम क्या कहेंगे ?

हम स्वामिवात्सल्य तो बंध कर देंगे, पांजरापोल को भी ताला लगा देगे, अरे ! जिनालय के जीर्णोद्धार को भी अभी के लिए मोकूफ रखेंगे । यह सभी चीजें हमारे हाथ में है । परंतु राजवी की माँग का... चार करोड का निकाल कैसे किया जाए ? शेठ जिनबंधुको यहाँ नहीं बुलाने का कारण भी अभी आप समझ ही गए होंगे ?''

शेठ कीर्तिधनने बात समाप्त की । बहुत बोलने से और मानसिक चिंताओ के कारण से उन्हें हाँफ चड गया ।

फिर से एकबार तीन हजार की जैन जनमेदनी चिंतातुर वदनवाली बनी ।

दसेक मिनिट विचार करने में पसार हुई...

वहाँ ही अचानक...

एक युवान की नजर सभागृह के विशाल दरवाजे के सन्मुख के भाग में गिरी।

उसने देखा कि, 'दूर से कोई आ रहा है ।' और युवान ने इस आगंतुकको पहचान कर एक भयानक चीख लगाई ।

''अरे, देखो तो सही ! शेठ जिनबंधु इस ओर आ रहे है । भर दुपहर में, खुल्ले पैर से त्वरीत गति से यहाँ आ रहे है, देखो !''

तीन हजार जैनो की दृष्टि तुरंत ही दरवाजे की ओर गई । कीर्तिधन शेठने की हुई बातो को सुनने के बाद सभी को जिनबंधु शेठ के प्रति अणगमा प्रगट चुका था । आनेवाली बड़ी आपत्तिओं के भणकारे सुनाई देने लगे थे..., और उसका निमित्त जिनबंधु ही लग रहा था ।

देखते देखते ही जिनबंधु एकदम नज़दीक आ गया । विशाल दरवाजे में प्रवेश करके उसने एक क्षण के लिए संपूर्ण सभा की ओर नज़र की । दूसरे ही क्षण में वह आचार्यदेव जिस उच्चस्थान पर विराजमान थे, उस ओर झडप से चलने लगा। उसकी आँखे रोने के कारण लाल-लाल बनी हुई लग रही थी । उसके मुख पर घोर पश्चाताप, अडगता दिखाई दे रही थी ।

वह सीधे आचार्यदेव के पास जा पहुँचा । उनके बाजु में खड़े रहकर दो हाथों को जोड़कर उसने चतुर्विध संघ को भावभरा वंदन किया और निरव शांति के बीच में मक्कम स्वर से उसने बोलने का प्रारंभ किया...

''पच्चीसवे तीर्थंकर समान चतुर्विध संघ ! मेरी अनंतश: वंदना स्वीकारजोजी!'' जिनबंधु का कंठ तो इतना बोलते बोलते थंभ गया । वह अंदरोअंदर बहुत रो रहा है, इस बात का सभी को स्पष्ट ख्याल आ गया ।

तो भी मन को अडग कर फिर से जिनबंधुने बोलना प्रारंभ किया...

''मैंने चतुर्विध संघ की घोर आशातना की है । मैंने महाजन को भिखारी कहा है, मौज-मजे करनेवाला कहा है । मैंने चतुर्विध संघ को दूसरे के पैसो से तागडधिन्ना करनेवाला जाहेर किया है । मैंने साधुओं को वहोराने का भी निषेध किया है । मैंने तारणहार पार्श्वप्रभु के जिनालय के जीर्णोद्धार की भी अतिक्रुर बनकर मज़ाक की है । मैंने पांजरापोल को वाहियात कृत्य कहकर उसका तिरस्कार किया है ।

अरेरे ! मैंने घोर... अति घोर पाप किया है ।

खेर ! आज मैं चतुर्विध संघ के समक्ष यह सभी कृत्यों की क्षमा माँग रहा

हूँ। मुझे विश्वास है कि श्री संघ मुझे क्षमा देगा ही । और आचार्यदेव को विनंति करता हूँ कि आप मुझे मेरे घोर अपराधो के लिए अति कठोर प्रायश्चित प्रदान करे। मेरी लेश भी करुणा मत करना । आप जो प्रायश्चित देंगे, वह मुझे संपूर्णत: मंजूर है...

और एक महत्त्व की बात...

मेरे पिताश्री के नाम से जैन महाजन ने १ लाख का खर्च करके स्वामिवात्सल्य करवाया है ।

पांजरापोल में वार्षिक ८ लाख की जरुरत है ।

जिनालय के जीर्णोद्धार के लिए ढ़ाई-तीन करोड़ चाहिए है ।

और, राजवी की आज्ञा से राजभंडार में ४ करोड़ जमा करवाने है ।

श्री संघ मेरे लिए भगवान है । उसके चरणो में वंदन करके मैं विनंति करता हूँ कि यह संपूर्ण लाभ मुझे प्रदान किया जाए । श्री संघ की यह छोटी-सी सेवा करने का अवसर यदि मुझे मिलेगा तो मेरा जन्म सफल हो जाएगा । कुल ७ करोड श्री संघ के चरणो में भेट धरने की मेरी भावना है ।

नहीं, मैं श्री संघ के उपर कोई भी उपकार नहीं कर रहा हूँ। बल्कि यह लाभ प्रदान कर श्री संघ मेरे उपर अनंत उपकार करेगा, मुझे अनंत संसार से बचाएगा, मेरे द्वारा की गई घोरातिघोर आशातनाओं में से मुझे रिहा करवायेगा ।

आचार्यदेव ! कृपया करके मेरी ये विनंतियाँ ठुकराना मत ।''

बोलते बोलते जिनबंधु आचार्यदेव के चरणों में गिर पड़ा । आँखों में से गंगा-जमुना बहने लगी । मात्र जिनबंधु ही नहीं, परंतु उपस्थित ३००० जैनो की आंखे भी सजल हो गई ।

सब रो रहे थे... पर वे अश्रु थे हर्ष के !

श्री संघ एक भयानक आपत्ति में से आसानी से बहार आ रहा था... उसके!

जिनबंधु की बेहद कंजुसाई जानने के बाद अचानक आश्चर्यजनक रीत से उसमें उत्पन्न हुई उदारता के दर्शन से !

''बोलो तीर्थाधिपति श्री पार्श्वनाथ भगवानकी जय !

बोलो आचार्यदेवश्री सिद्धिभद्रसूरिजी महाराज की जय !

बोलो उदारवीर शेठ जिनबंधु की जय !''

गगनभेदी नारे गुंज उठे ।

क्षण पहले का गमगीन वातावरण हर्षातिरेक से उभरने लगा ।

आचार्यदेव ने हाथ को उपर करके सभी को शांत होने का आदेश किया । शिस्तबद्ध जैनप्रजा दो-चार क्षणो में ही पूर्व की तरह एकदम शांत हो गई ।

आचार्यदेवने गंभीरवाणी उच्चारी...!!!

''जिनबंधु शेठने जिस तरीके से संघ का, महाजन का, साधुओ का, तीर्थाधिपति का अपमान किया है, यह देखते हुए उसे बहुत बड़ा प्रायश्चित आता है। उसने किए हुए पाप अनंतसंसार बढा दे यह पूरी शक्यता है । तो भी आज अतिविकट परिस्थिति में शेठ जिनबंधुने कल्पनातीत उदारता दिखाकर ७ करोड जितनी मातबर रकम को प्रदान करने का स्वीकार कर श्री संघ को बहुत बड़ी समस्या में से उगारा है । उपरांत में इस कार्य के करने पर भी उसे किसी भी प्रकार का अभिमान नही है, खुद के पातिकोका घोर पश्चाताप है... यह सभी को देखते हुए उसने किए हुए पापो का प्रायश्चित संपूर्ण हो गया है । श्रीसंघ रक्षा करने का कार्य ही उसका प्रायश्चित है । तो भी सामान्य से जो प्रायश्चित देना होगा, यह मैं पीछे से दे दूँगा ।

साकेत जैनसंघ को मुझे खास सूचना देनी है कि, जिनबंधुकी पूरानी भूलो को कोई याद नहीं करेगा । **पश्चाताप, प्रायश्चित होने के बाद पापी भी पापी नहीं कहलाता ।** जिनबंधु की निंदा करनेवाला प्रायश्चित का आभागी होगा – यह बात सभी लोग समझ लेना ।

शेठ जिनबंधु !

अभी रोओ मत ! शांत हो जाओ । आप पवित्र बन चुके हो । पाप तो सभी से होता है, परंतु आपने तो अपूर्व शुद्धि की है । बस ! अभी खुद के जीव को

अधिक धिक्कारना मत !

परंतु,

एक बात का मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है ।

और समग्र जैनप्रजा भी यह आश्चर्य अनुभव रही है ।

वह यह है कि 'जिस तरीके का दुर्व्यवहार हमने तुमारा अंत के चार महिनो का सुना है, यह देखते हुए तो तुम एक मुद्रा भी धर्ममार्ग में व्यय करो, इस बात में लेश भी श्रद्धा होना दुःशक्य है । परंतु तुम तो ७-७ करोड जितनी मातबर रकम दानधर्म में खर्च रहे हो । आपके पिताश्रीने भी इतने हद की उदारता दिखाई नहीं है ।

यह अणधारा, नही कल्पा हुआ परिवर्तन हुआ कैसे ?

बेहद कंजुसाई के बदले बेहद उदारता प्रगटी कैसे ?

कौन बना तुमारा तारणहार ?

जिनबंधु ! हमारे इस आश्चर्य का तुमे निवारण करना है ।''

आचार्यदेव की वाणी को सुनकर सभी को बहुत आनंद हुआ, क्योंकि सभी के मन में यही विचार गुमराह रहे थे और आचार्यदेव ने उसी को समर्थन दिया था ।

जिनबंधु खड़ा हुआ... आचार्यदेव के आशीर्वाद लेकर उनके बगल में स्थित हुआ ।

और चातकपक्षी के सदृश उसके शब्दो को सुनने में आतुर साकेत के श्रीसंघ के सन्मुख जिनबंधु ने खुद के तारणहार का स्वरुप बतलाने का आरंभ किया...

''मैंने स्वामिवात्सल्य का, पांजरापोल का और अंत में जीर्णोद्धार का निषेध किया यह सभी बातें तो आप जान ही चुके होंगे ।

मेरे में धन की मूर्च्छा बहुत ही थी । पिताश्री के अबजो रुपिये मुझे वारसे में मिले है । मुझे किसी भी प्रकार की मेहनत करनी पडी नहीं है ।

परंतु तो भी, एक पैसा भी देना मुझे मेरे प्राण देने के समान प्रतिभासित

होता। अत्यावश्यक जो खर्चे करने पडे, उसमें भी मैं सिर से लेकर पाँव तक जल उठता । पिताश्री मुक्त हाथों से दान देते, यह भी मुझे खुंचता । परंतु,वहाँ मैं लाचार था ।

पिताजी के देहांत के बाद संपूर्ण सत्ता मेरे हाथों में आई और मैंने संपत्ति का व्यय लगभग बंध कर दिया । और इसके लिए ही जैर जैसे कडवे शब्द भी मैंने जैनमहाजन को सुना दिए ।

मेरा आत्मा अत्यंततीव्रकर्मवाला बन गया था ।

परंतु...,

मेरी भवितव्यता उज्जवल होगी, मेरा काल पक गया होगा...

और एक अभूतपूर्व प्रसंग आज दुपहर को ही बन गया ।

दुपहर का लगभग साढ़े बारह-एक बजे का समय...

मैं मेरी हवेली के दूसरी मंजील पर आराम करने को पहुँचा । दूसरी मंजील पर आधे भाग में दो रुम है और आधे भाग में खुल्ली गेलेरी है । परंतु उपर से ढंकी हुई है । वहाँ झुले पर बैठा बैठा मैं आराम कर रहा था ।

आप तो जानते ही हो कि मेरी हवेली शांत वातावरण में, लोगों की वस्ती से दूर है । वहाँ खास आवागमन भी होता नहीं । मेरी हवेली के समक्ष खुल्ला मैदान ही पथरा हुआ है ।

खुल्ले मैदान की ओर मेरी नज़र थी ।

अंतिम चार महिनों के प्रसंग मुझे याद तो थे ही । पिताजी के मृत्यु का स्मरण चल रहा था... परंतु उन सभी में मैंने गलतियाँ की है, मैं गलत हूँ... यह सद्‌बुद्धि अब तक मुझे जन्मी नहीं थी ।

इसी अवसर पर एक मानवाकृति दूर-दूर से मेरी हवेली की ओर आती हुई मुझे दिखाई दी । वह आकृति दूर होने से पहले तो मुझे स्पष्ट दिखाई न दी, मात्र इतना ही ख्याल आया कि उसने कोई वस्त्र पहने नही है, उसके पैर में किसी भी प्रकार

के जूते नही है । अंदाजन ६-७ हाथ लंबा उसका विशिष्ट देह है ।

''अहो ! आश्चर्य ! यह तो धगधगती रेती से भरा हुआ मार्ग !

इसमें यह कौन मानव खुल्ले देह से, खुल्ले पैर से धीरे-धीरे चला आ रहा है ?''

मुझे विचार आया और कौन जाने क्यों परंतु सहज रीत से मुझे उस मानव के प्रति अहोभाव प्रगटा । मेरे मन में अंतिम चार महिने में बने हुए सभी प्रसंग एकदम ताजे थे । अभी भी मैं उन प्रसंगो का ही विचार कर रहा था । कौन जाने ? मेरे भी मन के विचारो में बड़ा आमूलचूल परिवर्तन होने लगा ।

''मैंने स्वामिवात्सल्य का निषेध किया, यह क्या अच्छा किया ?'' श्री संघ भूखा हो तो उसे खिलाउ यह समझ तो गलत है । संघ भूखा नही है, परंतु वह रत्नत्रयी का आराधक है, तीर्थंकर है, गुणसंपन्न है । उनकी भक्ति करने से मेरा ही कल्याण होनेवाला है ।

हकीकत तो यह है कि मुझे पैसे खर्चने नहीं थे । परिग्रह छोड़ना नही था। इसलिए मैंने जात-भात के कुतर्को को करकर स्वामिवात्सल्य को उडा दिया । हाय! मैंने श्री संघ को खाउधरा कहा ! यह मेरी कैसी अधमाधमता !

यह मुझे जो कुछ मिला है, वह श्री संघ की भक्ति पूर्वभवो में की होगी, उसके प्रभाव से ही तो मिला है ।

तो पांजरापोल भी कहाँ गलत काम है ? वे पशु खुद के पापोदय से पशु बने यह तो सही है । परंतु उन्हें बचाकर हमें तो धर्म ही होनेवाला है । मुझे तो बड़ी मात्रा में पुण्यबंध ही होनेवाला है ।

रे ! यह जिनमंदिर ! उसका लाभ तो कितना अपरंपार है ! जिनालय बड़ा हो तो सभी को भक्ति करने की मजा आए, भाववृद्धि पाए, लाखो लोग भविष्य में सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति, केवलज्ञान को पाए... और यह सभी का बीज मैंने बनाया हुआ जिनायतन बने । उसमें विलंब करके तो मैं खुद के ही लाभ से

वंछित रह रहा हूँ ।

मुझे इस परिग्रह की लालसा तोड़नी ही चाहिए । यह धन का राग ही मुझे गलत मार्ग पर चिंध रहा है । कुतर्को को उजागर कर रहा है । यदि संपति का राग तोड दू, तो शुभ विचार एकदम झडप से आने लगे ।

धनासक्ति तो नरकदायिनी है ।

नही ! मुझे नरक में नही जाना । मैं महाजन को फिर से बुलाता हूँ...

अरेरे ! मैं स्वभान भूला । मुझे महाजन को बुलाना चाहिए ? कि मुझे उनके पास जाना चाहिए ? मैं तो विनय से भी भ्रष्ट हुआ । नहीं ! मैं खुद ही महाजन के पास जाउगा । उनके पैर में गिरूँगा, माफी माँगूगा, मेरे अपराधो का बयान करूँगा, और स्वामिवात्सल्य, पांजरापोल, जीर्णोद्धार... यह सभी का लाभ मैं ही लूंगा । मुझे इसमें ५०% नहीं, १००% ही देना है ।''

मेरे मन में पवन की झडप से एक के बाद एक शुभ विचारों की धारा चलने लगी । मैं खुद आश्चर्यचकित हो रहा था कि इतने सारे उँचे विचार तो मैंने मेरी जिंदगी में कभी अनुभवे नहीं है । इतना सब परिवर्तन अचानक ही कैसे हुआ ?

वो मानवाकृति नजदीक आ रही थी...

मेरी दृष्टि अपलक नेत्र से उस महामानव को ताक रही थी...

मेरा उस मानव के प्रति अहोभाव लगातार बढ़ रहा था...

मुझे ऐसा लगा कि इस महामानव के दर्शन के प्रताप से ही मेरे चित्त की मलिनताएँ झडप से नष्ट होने लग गई थी । मैं परम आनंद को अनुभव रहा था ।

आकृति नज़दीक आई, वह स्पष्ट दिख रही थी ।

'ओ भगवान !

क्या उस मानव का तेज !

क्या उस मानव का मंद मंद स्मित को प्रसारता हुआ मुखारविंद !

क्या उस मानव के नीचे ढले हुए, धरती को ही ताकते हुए नेत्र !

यह कौन होगे ? क्या कोई राजपुत्र ने संसारत्याग किया होगा ?

अरे ! वे मेरी हवेली के समीप से ही पसार होगे । यह कोई महामानव लग रहे है । चलो, उसके चरणो में गिरु । मेरी झोपडी में पगलिया करने के लिए, मेरी इस झोपडी को पावन करने के लिए विनंती करूं... ?

मैंने यह विचार किया और मैं लगभग दौड़ पडा । दौडते दौडते नीचे उतरा। 'वह महामानव आगे न निकल जाए' इस भय से ही मैं दौडते दौडते हवेली के झांफे तक निकल आया । मैंने देखा कि, 'वह महामानव केवल ३०-४० डग ही मुझसे दूर थे ।' मैं उनकी ओर दौडा ।

मेरे पैर भी खुल्ले थे, जल रहे थे । परंतु मेरा आत्मानंद तो अपरिमित अपरिमित उछल रहा था, इसलिए ही वह भयंकर गरमी को भी मैं संपूर्णत: भूल गया ।

नज़दीक पहुँचकर रस्ते के बीच में ही, धूल में ही उनके चरणों में मैं चत्तोपाट सो गया । कपड़े बिगड़े या शरीर बिगड़े इस बात की मुझे परवा ही नहीं रही । उनके अंगुठे से मेरा मस्तक मैंने बराबर घिसा । आँखों में से बह रहे अनराधार आँसुओं से उस पवित्र पुरुष के पवित्र चरणों का प्रक्षालन किया ।

उसके पश्चात् खडे होकर दो हाथ जोड के उनके समक्ष मैं खड़ा रहा... ''भगवान् ! मेरा आँगन पवित्र करो, मुझे भिक्षा का लाभ दो !''

वह महामानव कुछ न बोले, परंतु न जाने उन्होंने मेरी भावभीनी बिनती स्वीकार की हो वैसे वे मेरे घर के दरवाजे की ओर चलने लगे ।

मैं तो आनंदविभोर बन गया । ''पधारो !!! पधारो भगवन् !!!'' मैं हर्षपूर्वक उन्हें मार्ग को बताता हुआ मेरे हवेली के द्वार पर ले गया ।

''अेय ! निर्ममा ! जल्दी आ । देख तो सही, हमारे घर में किसके पगले हुए है ।'' हर्ष से मैंने मेरी पत्नी निर्ममा को बुलावा दिया । मेरे बुलावे से वह भी रोगग्रस्त होने के बावजूद त्वरीत ही वहाँ आई । मैं महामानव को मेरे रसोडे तक ले गया । परंतु मैंने देखा कि रसोई में कुछ भी बाकी नहीं था । रसोईया भी हाजर नहीं

था ।

मैं मुँझा गया,

''इस मेरे तारणहार को मैं क्या वहोराउगा ? कुछ भी हैं तो नही ?''

यहाँ–वहाँ दृष्टिपात करते हुए मेरी नज़र घी से भरे हुए डब्बे पर गई । उत्साह–उत्साह में मैंने संपूर्ण डब्बा ही उठाया । ''भगवन् ! मुझे लाभ दीजीए ।'' मैं बोलते हुए तो बोल गया, परंतु मुझे ही फिर से संशय हुआ कि,

''यह महामानव तो अकिंचन है । वस्त्र तो नहीं है, परंतु साथ ही बर्तन भी नहीं है । तो वे घी लेंगे किसमें ?''

परंतु उस ही अवसर पर उस महामानवने दो हाथों को पात्र स्वरुप बनाकर हाथ लंबाया । मैं चकित हुआ । ''क्या हाथ में घी वहोरेंगे ? वह गिर नहीं जाएगा?'' क्षण तक शंका हुई तो सही परंतु, तुरंत ही वह शंका को मैंने दूर भी कर दी । ''यह नक्की कोई महामानवी है ।'' इस श्रद्धा से मैंने उनके हस्तो में सीधी घी की धारा ही की । मेरे आश्चर्य के बीच एक भी बुंद नीचे गिर रही नहीं थी । संपूर्ण हाथ घी से भर गया । और मेरा हृदय हर्षातिरेक से भर गया । हाथ के भर जाने पर मैं रुक गया, यह महामानव कुछ बोले नहीं, परंतु वहाँ खडे खडे ही बहुत झडप से उन्होंने घी वापर लिया ।

मैं हर्ष से रो रहा था, साथ ही मेरे घोर पापो का पश्चाताप भी मुझे रुला रहा था । अचानक मुझे क्या सुझा कि मैं घी के डब्बे को बाजु में रखकर महामानव के चरणो में बैठ गया, पैर पकड लिए ।

''भगवन् ! मैंने घोर अपराध किए है, आप उसे सुनीए और उसका प्रायश्चित दीजीए । मेरे पर इतनी कृपा कीजीए...''

ऐसा बोलकर मैंने उनके मुख की ओर देखा । परंतु मुझे उनके चेहरे से कोई प्रतिभाव न मिला । मैंने अभी तक यह अनुभव किया था कि यह महामानव सुन तो रहे थे, परंतु उसकी उनके मन पर कोई विशेष असर छा नही रही थी । घी वहोरने

के पहले, घी वापरने के बाद... उनकी मुखमुद्रा मुझे एक जैसी ही दिखाई दी ।

वे जीवंत होने के बावजूद भी जाने कि जड़ थे...

वे सब कुछ देखने के बावजूद भी जाने कि कुछ भी देख नहीं रहे थे ।

वे सब कुछ सुनने के बावजूद भी जाने कि कुछ सुन नही रहे थे ।

मैंने दो-तीन बार वापस-वापस विनंती कि, उनके पैरो को छोडा नही । परंतु उन्होंने कोई भी प्रत्युत्तर नही दिया । शांत वदन से खड़े ही रहे ।

अंत में मेरी धर्मपत्नी निर्मला ने मुझे समझाया कि ''यह महापुरुष कोई विशिष्ट अभिग्रहधारी लग रहे है । इसलिए वे कुछ भी बोल नहीं रहे । तो आप उन्हें परेशान मत करो । आप यहा आचार्यदेव के पास प्रायश्चित ले लेना । परंतु उन्हें जाने दो । उन्हें पकड़कर मत रखो...''

मुझे उसकी बात सच्ची लगी, और मैंने उन्हें छोड़ भी दिया... ''आप प्रस्थान कर सकते हो, पूज्यपुरुष !'' मैंने वचन उच्चारे और तत्काल ही वे चल पड़े ।

मैंने यह भी देखा कि वे संपूर्णत: निर्वस्त्र होने के बावजूद भी कुछ भी खराब लग नहीं रहा था । कुछ भी बिभत्स लग नहीं रहा था । उन्हें सिर्फ ताकने का ही मन कर रहा था । उसमें मुझे बहुत बहुत आनंद आ रहा था ।

वे महामानव तो अभी रसोडे के द्वार तक ही पहोंचे थे की वहाँ बहार से मेरा रसोईया आते हुए दिखाई दिया । रसोईया उस महामानव को देखकर विस्मित हुआ... ''अरे ! आप हो ?'' वह बोला ।

साष्टांग दंडवत् वह नम गया और फिर त्वरीत ही खडे होकर वह बाजु पर चला गया । ''पधारो ! पधारो ! आपके मार्ग में मुझे विघ्नभूत नहीं होना ।'' वह आनंद से बोला और वह महामानव तुरंत ही वहाँ से आगे निकल गए ।

वो रसोईयाँ तो अनिमेष नज़रो से जाने कि कोई पूरानी मन को अच्छी लगती हुई व्यक्ति मिली हो... इस तरीके से उस महामानव की पीठ की ओर देख रहा था । मुझे लगा कि 'जरुर यह रसोईया इस महामानव को पहचानता है ।'

मैं रसोईयें के समीपमें गया । उसे आजुबाजु का कोई ख्याल रहा नहीं था ।

मैंने उसे जोर से ढंढोला । ''हरिराम ! अेय हरिराम !...'' मेरे संबोधन से वह सचेतन हुआ ।

''तूं जानता है, इस महामानव को ? कौन है यह महापुरुष ?...'' मैंने अत्यंत जिज्ञासा से प्रश्न किया ।

रसोईयाँ बोला ''स्वामी ! आप इस महापुरुष को नहीं पहचानते ?

अहो ! आश्चर्य ! यह तो है सिद्धार्थ राजा के लाडीले राजकुमार **वर्धमान** !

निकट-भावि चरम तीर्थंकर !...

त्रिलोकगुरु !...

इन्द्रों के भी मालिक !...

विश्वोपकारी !...

स्वामी ! मैं क्षत्रियकुंड के राजमहल में ही रसोई बनाने का काम करता था ।

यह वर्धमानकुमार को तो मैं जन्म से देखते आ रहा हूँ । उनकी गुणगरिमा तो बाप रे बाप ! क्या उनकी उदारता ! क्या उनकी विशाल दृष्टि !

वे बालक थे तभी भी उनकी उदारता बहुत थी ।

एकबार वर्धमानने खुद के पिता को पूछा कि, ''हमारे वहाँ काम करनेवाले आदमीयों को आप जितना पगार देते हो, वह पगार देढ़ गुणा कर देंगे, तो हमे कोई तकलीफ होगी क्या ?'' राजा सिद्धार्थने कहा, ''नहीं ! अपने पास तो विपुल संपत्ति है।'' और बाल वर्धमान ने जीद करके हमारे सभी का पगार देढ़ गुणा करवा दिया ।

अरे ! राजमहल के रसोडे में तो हररोज भाँत-भाँत की चीजें बनती, परंतु हमने कभी भी उन्हें यह सब खाते हुए देखा नही । वे तो यह सभी चीजें हमे खाने के लिए दे देते । किसी को भी भूखा रहने नहीं देते । पिता सिद्धार्थ बहुत बार प्यार-मजाक में बोलते कि, ''बेटा वर्धमान ! तुझे मैं राजा नहीं बनाऊगा । क्योंकि यदि मैं तुझे राजा बनाउ, तो तूं संपूर्ण क्षत्रियकुंड को दान में दे दे वैसा है...''

शर्द की ठंडी में रात को हम ध्रुजते होते और आधी रात को वे वर्धमानकुमार हमे रजाईया, चोरसे ओढा जाते । खुद के लिए ठंडी की कोई फिकर नहीं, परंतु हमारे दु:ख में वे त्रस्त-त्रस्त हो जाते ।

कभी हमारी कोई भूल हो जाए और राजवी सिद्धार्थ हमे सामान्य उपालंभ दे, कोई कडक सूचन करे तो भी उन्हें अच्छा नहीं लगता । वे चुप-चुप के रोते रहते । एक तरफ पिता के विनय के लिए सामने नहीं बोलते और दूसरी ओर हमारे सामान्य दु:ख भी सह नहीं सकते ।

हम सभी को वह कुमार बहुत-बहुत प्रिय थे । उनका मुख देखने के लिए हम तरसते, उनके साथ बातें करने के लिए हम तरसते, उनका कोई काम करने मिले तो हम खुश-खुश हो जाते ।

उनकी शादी हुई, तो भी उनकी मर्यादापालकता आश्चर्यजनक !

जाहेर में कभी भी पत्नी के साथ हसते नही, मजाक करते नही, बात करनी पडे तो भी गंभीरता से, सौम्यता से बात करते ।

जाने कि,

वर्धमान और यशोदा सग्गे भाई बहन ही न हो, ऐसी निर्दोषता हमे दिखती ।

अंत में उनके माता-पिताकी मृत्यु के पश्चात्, भाई नंदीवर्धन के कहने से दो साल तक रुके और उसके पश्चात् कुमार ने दीक्षा का मार्ग स्वीकारा ।

उनके जाने के बाद मुझे राजमहल में बिलकुल अच्छा लगता नही, बार-बार उनकी याद सताती .....

वे प्रत्येक स्थानों पर उनके साथ बने हुए प्रसंग याद आते और उनका विरह मुझे बहुत रुलाता ।

मेरा शरीर बिगडने लगा ।

अंतमें उनकी स्मृति न हो इसलिए ही मैंने क्षत्रियकुंड का त्याग किया ।

फिरते फिरते यहाँ आया और आपके रसोईये के तौर पर रहा ।

यह तो मेरा परम परम सौभाग्य ! कि बिना किसी मेहनत से मुझे मेरे कुमार के दर्शन प्राप्त हुए । परंतु उनका वैराग्य कैसा ! तीस तीस वर्ष तक का उनका और मेरा मालिक–नौकर का संबंध ! तो भी जाने के मुझे पहचानते ही नही है, कुछ बोलते ही नही है , बात करते ही नही है ।

मुझे तो आनंद है, उनकी इस लोकोतर दशा का ।

हमे रहे रागी !

संसार में डुबे हुए !

परंतु मेरे मालिक तो है विरागी !

संसार में हमेशा अलिप्त !

शेठजी ! आपकी हवेली तीन लोक के लिए पूजनीय बन गई, कि जहाँ मेरे मालिक की पूनित पधरामणी हुई । आपने उन्हे सुपात्रदान दिया ! घी दिया ! अहो! आपका भव सुधर गया । शायद नजदीक के ही भवो में आप भी मोक्ष में सिद्धावोगे । आप भी मेरे लिए वंदनीय बन गए, कि जिन्होंने मेरे मालिक को भिक्षा वहोराई ।''

... रसोईयाँ बोलता ही रहा और मैं सुनते ही रहा ...

'' मैं कितना धन्यातिधन्य !

मैं कितना महापुण्यशाली !

मैं कितना सौभाग्यवंत !...'' मेरा हर्ष हृदय में समा नही रहा था ।

मैने कहाँ '' हरिराम ! मेरे आत्मा में परिवर्तन आया है । अभी में कंजुस रहा नही हूँ । मैंने दृढ निर्णय किया है कि श्री संघ ने मेरे पास में जो विनंतीयाँ की, वह सभी मुझे स्वीकारनी... संपूर्ण स्वीकारनी है ।

उन्होनें तीन माँग की है... संघजिमन, पांजरापोल, जीर्णोद्धार... यह सभी के कुल ३ करोड मुझे श्री संघको भेट करने है ।

हरिराम ! मैं अभी ही महाजन के पास जा रहा हूँ। इसमें अभी एक पलका भी विलंब मुझे चल सके वैसा नही है ।''

''परंतु स्वामी ! श्री संघको अभी ३ करोड की नहीं, दूसरे चार करोड की आवश्यकता है । साकेत के राजवीने नए किल्ले के निर्माण के लिए सभी समाजों की तरह जैन समाज के पास भी कुल चार करोड रु. कि माँग रखी है । यदि संघ प्रदान न करे, तो सभी को साकेत में से बहार निकाल देने की सख्त धमकी दी गई है ...'' हरिरामने मुझे कहाँ ।

मैंने कहाँ ''हरिराम ! अभी तो संघ के लिए मुझे मेरा सर्वस्व अर्पण कर देना पडे, खुद मेरी भी लिलामी करनी पडे तो भी में तैयार हूँ ।

मैं अभी ३ करोड नही, ७ करोड दूँगा ।''

''यदि, ऐसा हो, तो नगर के सभागृह में अबघडी पहुँच जाओ । वहाँ आज संपूर्ण जैन संघ इस ही प्रश्न के विषय में इकट्ठा हुआ है । वहाँ पहुँचकर उदारता बतलाकर सभी को चिंता मुक्त करो...'' हरिरामने मुझे संघमिलन की बात की ।

और झटपट मैं यहाँ आ पहुँचा । उसके पश्चात्का वृत्तांत तो आप सभी जानते ही है ।

शेठ जिनबंधु ने धीरे-धीरे फिर भी स्पष्ट तरीके से अथ से इति का संपूर्ण बयान कर दिया ।

आचार्यदेव के समेत ३,००० जैन प्रजा आश्चर्यचकित होकर सुनती ही रही । चौबीसवे तीर्थंकर प्रभु वीर होनेवाले है, इसका ख्याल तो बहुत से लोगो को था, परंतु इसी तरीके से साधनाकाल में प्रभुवीर जिनबंधुको मिलेगे... वैसी तो कल्पना भी कहाँ से हो !

और उसमें भी केवल वर्धमानस्वामी के दर्शन, वंदन, सत्कार मात्र से अति अति जालीम दोष भी जडमुल से विनाश पाएगा और जाने कि एक अद्वितीय इतिहास रचा जाएगा... यह तो सभी को संपूर्णतः अशक्य लगती हुई बात थी !

आचार्य सिद्धिभद्रसूरिजीने सभी की जिज्ञासा का संतोषकारक जवाब देना चालु किया कि ''आप सभी को आश्चर्य लगेगा कि, वर्धमानस्वामी के दर्शन मात्र से इतना सारा परिवर्तन कैसे होता है ?

परंतु आध्यात्मिक जगत की एक विशेषता है कि जिस आत्मामें जो गुण अत्यंत आत्मसात् हुआ होता है, उसके संपर्क में आनेवाले भी जल्दी से उस गुण को पाते ही है ।

वर्धमानस्वामी का उदारतागुण बेहद है ! इसकी प्रतीति तो हमें बहुत सालो के पहले ही हो गई थी !

हम सभी क्षत्रियकुंड में थे, तभी एक ब्राह्मण हमारे परिचय में आया था । उसने ही बात कही थी कि,

''यहाँ के राजकुमार वर्धमानने एक साल तक दान दिया, तभी मैं बहार गाँव था । उनकी दीक्षा के बाद मैं वापस लौटा । मैं था गरीब !

मेरी पत्नीने मुझे सख्त दाँटा । कहा की अभी भी वर्धमानकुमार के पास जाओ । वे दानवीर है, करुणाशील है । आपको कुछ ना कुछ देंगे ही । और मैं वर्धमानकुमार को ढूँढने निकल गया ।

उने ढूँढकर भीख माँगी । मेरे प्रति की अपार करुणा से उन्होने मुझे खुदका एकमात्र वस्त्र भी दान में दे दिया ।

उस ब्राह्मण ने हमें वस्त्र भी दिखाया था ।

तभी से मुझे एक विचार प्रगटा था कि 'साधुओके आचार के अनुसार तो वे असंयत संसारी को कोई भी चीज दे नही सकते । अभी यह तो तीर्थंकर की आत्मा है । उन्होने क्यो इस आचार का भंग किया ? लगता है उनकी उदारता, करुणा असीम होगी । इसलिए ही **यह वस्त्रदान उन्होंने किया नही होगा, परंतु उनसे हो गया होगा ।**

इसी उदारता गुण का प्रभाव है कि उनके दर्शन–वंदन मात्र से जिनबंधु जैसे

की कंजुसाई नष्ट हुई..... उदारता विकसित हुई ।

भव्यजनो ! आप भी यदि आपके आत्मा में कोई गुण कि विशिष्ट सिद्धि करोंगे, तो आप के संपर्क में आनेवाले भी आपके जैसे ही गुणवान बनकर रहेगे ।

चलो ! हम सभी उनकी खोज करते है । अपना भाग्य होगा तो आज ही उस तीर्थंकर के दर्शन प्राप्त होंगे ।''

आचार्यदेव के कथन के अनुसार ही गाँव के बहार लोग चल पडे ।

वहाँ जंगल के अंदर एक वृक्ष के नीचे श्रमण भगवान महावीर कायोत्सर्ग में खडे हुए दिखाई दिए । सभीने प्रभुको भावभरी वंदना की और प्रभुके गुणो को स्मरण करते करते खुद-खुद के स्थानों की ओर विदाय ली ।

*****

श्री योगशतक ग्रंथ का छोटा सा अत्यंत मार्मिक वाक्य ''**प्रायो भावाद्भावप्रसूतेः**''

एक आत्मा में जो भाव आत्मसात् हुआ हो, उस आत्माके संपर्क से, उस आत्माकी वाणी से अन्य जीवो में भी वैसे प्रकारके भाव उत्पन्न होते है ।

इसका गर्भित अर्थ यह है कि जो भाव हमारे में सिद्ध हुआ नही है, उस भाव को देशनादि द्वारा दूसरे जीवो में उत्पन्न करने का प्रयत्न प्रायःनिष्फल हुए बिना रहता नही ।

→ हजारों-लाखों श्रोताओं को महाब्रह्मचारी बनाना है ना ?

- तो स्वयं निर्विकारितागुण को सिद्ध करो...

→ शिष्यों को महासंयमी बनाना है ना ?

- तो स्वयं उत्तमोत्तम संयमपरिणामी बनो...

→ कसाई जैसे क्रुर लोगों को मक्खन जैसे कोमल बनाना है ना ?

- तो स्वयं अगाध करुणाशाली बनो...

→ ईर्ष्या से परस्पर झगड रहे लोगों को परस्पर प्रमोदशाली बनाना है ना ?

– तो स्वयं हमारे स्पर्धकों के, हमारे सहवर्तीओं के विकास में आनंदी बनो....

→ धन के पीछे अंधे होकर भागते हुए करुणापात्र दुःखी जीवों को निष्परिग्रहता में मस्त बनाना है ना ?

– तो स्वयं भी मूर्च्छा से सर्वथा अलिप्त बनो...

→ बोल बोल करनेवाले, वाचाल जीवों को मौनव्रतधारी, हित-मित प्रियवक्ता बनाना है ना ?

– तो स्वयं विकथाओका हास्य-मजाको का सज्जड त्याग करो...

→ विकारो से खदबदता आत्मा देशना से श्रोताओको ब्रह्मचारी बना सकेगा ?

– प्रायः **असंभव** !

→ शिष्यों, पुस्तकों, संस्थाओं, देह आदि परके ममत्व से भरा हुआ साधु आश्रितों को संसारीयों को निष्परिग्रही, अनासक्त बना सकेगा ?

– प्रायः **असंभव** !

→ 'मैं / मेरा' अहंकार से पीडित, इसलिए सिर्फ खुद के ही उत्कर्षको झंखता, अन्य के उत्कर्षको तोडता कोई जीव ईर्ष्यालुओं को प्रमोदशाली बना सकेगा ?

– प्रायः **असंभव** !

→ श्रावकों-भक्तो के अतिपरिचय में डुबा हुआ कोई जीव खुद के शिष्यों को अंतर्मुखी बना सकेगा ?

– प्रायः **असंभव** !

हमें सोचना है कि... सभी के सभी तीर्थंकरों ने उत्कृष्ट में उत्कृष्ट परोपकार किया है, परंतु उस परोपकार के लिए सभी के सभी तीर्थंकरों ने जंगल के, मौन के, अंतर्मुखता के मार्गको स्वीकारकर सबसे पहले स्वयं में अनंतगुण

संपन्नता प्रगटाई है ।

हमें सोचना है कि... शास्त्रोकारोने १२+१२ वर्ष अंतर्मुख बनकर संविग्न– गीतार्थ बनकर उसके प्रश्चात् परोपकार करने का मार्ग बतलाया है ।

हमें सोचना है कि... हम गलत मार्ग पर तो आगे नही बढ रहे है ना ? परोपकार की धून में कहीं स्व ओर पर दोनों का अहित नही कर रहे ना ?

परोपकार का सबसे सीधा, सादा, सरल मार्ग यह लग रहा है कि

'स्वयं गुणसमुद्र बने । उसके बाद दूसरे को गुणसमुद्र बनाईए ।'

स्वयं भावसंपन्न बने । उसके बादमें दूसरे को भावसंपन्न बनाईए ।

ऐसा करने में प्रयास बहुत ही कम करना पडता है .....

Minimum Effort + Maximum Result. भाव संपन्न आत्मा की प्रवृत्ति में होता है ।

Maximum Effort + Minimum Result. भावरहित आत्मा की प्रवृत्ति में होता है ।

काल्पनिक ऐसा भी यह कथानक शास्त्रीय सिद्धान्तो से अबाधित है ।

शास्त्रीय सिद्धान्तों का सचोट प्रदर्शक है ।

इसलिए ही उसकी **काल्पनिकता** दृष्टि के सामने लाने के अलावा उसमें गर्भित हुआ, उसमें प्ररुपित शास्त्रीय सिद्धान्तों की वास्तविक्ताओं को ही नज़र के समक्ष लाने का प्रयत्न कीजीए... यही हमारे लिए अत्यंत हितावह है ।

***

२. विन विनियोग न संभवे रे, परने धर्मनो योग रे

''कौण है, अंदर ?'' बोलते हुए **अमर** जल्दी से तिजोरीवाले रुम की ओर आगे बढ़ा । उसे कुछ अशुभ होने के संकेत हो रहे थे ।

वक्त था रात के दो बजे के बाद का ! अमर तो खुद की पत्नी के साथ खुद के विशाल शयनखंड में सुखनिद्रा में डुबा हुआ था । उसके दो बालक ! जाने कि देवलोक में से उतर आए दो देवकुमार ही न हो, वैसे अत्यंत सोहावने, रुपवान! वे दो छोटे बालक बाजु के खंड में निद्रावश बने थे । **अमर** का छोटा भाई कि जिसका नाम था **सौरभ** वह भी खुद के अलायदे खंड में निद्रादेवी के शरण में पहुँच चुका था । सौरभ की सगाई थोड़े दिन पहले ही **काकंदी** नगरी के शेठ जितकेतु की लड़की **रंभा** के साथ हुई थी । दो-चार महिनो में अच्छे मुहूर्त पर शादी करने का निर्णय भी हो चुका था ।

अमर की पत्नी **सुलक्षणा** ! सचमुच नाम के अनुसार सभी प्रकार के स्त्रीयों के अच्छे लक्षणों को धारण करनेवाली ! रुप तो मान लो कि स्वर्गीय अप्सरा की तुलना में आए वैसा था ही, परंतु साथ में सतीत्व, लज्जा, सहनशीलता विगेरे गुण की जो आर्यदेश की नारी में होने चाहिए, वैसे सभी गुण उसमें थे ।

अमर और सौरभ के पिता चंपानगरी में नगरशेठ थे । करोड़ो रुपियों की धीकती कमाई ! दानवीर के तौर पर प्रख्यात ! भारी हिंमतबाज ! **सोभागचंद** उनका नाम होने के बावजूद उनके गुणों के आधार पर **दानशूर** शेठ, **वीरतिलक** शेठ...आदि बहुत-से नामो से प्रजा उन्हें पहचानती थी । पत्नी **शोभना** से उन्हें अमर और सौरभ जैसे उत्तम पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई थी । चंपानगरी के किनारे, एकांत जैसे स्थल में विशाल हवेली में यह संपूर्ण परिवार सुखपूर्वक दिनों को व्यतित कर रहा था ।

परंतु सब कुछ आनंद-सुखपूर्वक ही चले, तो उसे संसार ही कैसे कहा जाए ?

और एक रात उनके इस परिवार पे भयंकर आफत तूट पडी ।

जाने कि कुदरत को उनका यह हसता-खिलता संसार मंजूर नहीं था । इसलिए ही कुदरत घातकी बनी... कसाई बनकर उस रात को उनके परिवार पर तूटी ।

बात यह बनी कि...

चंपा के आसपास के जंगलों में और पर्वतों में थोड़े हलकी जाति के लोग चोरी-चपाटी का धंधा करते थे । पथिको को लुँटना, अवसर मिले तो नगर में आकर भी लुँट चलानी, यह ही उनका व्यवसाय था ।

कालसिंह नाम के एक लुँटेरे के अधिपति को एक दिन बड़ी लुँट चलाने का विचार आया । उसे याद आया कि, ''नगरशेठ की हवेली लोगों के रहवास के स्थानो से थोड़ी दूर है । इसलिए ही यदि वहाँ लुँट चलाने में आवे, तो कोई भी उन्हें मदद करने के लिए भी पहुँच नहीं पाएगा । और नगरशेठ के वहाँ कम से कम लाखो रुपिये तो मिलने ही वाले है । बस, एकबार इसमें सफलता प्राप्त हो जाए, तो एक-दो सालो तक निरांत (शांति) हो जाए ।''

और कालसिंह ने खुद के बाकी के आठ साथीदारो के साथ विचार-विमर्श किया... रात को एक दिन सोभागचंद शेठ के वहाँ लुँट-फाँट करने की योजना बना दी ।

योगानुयोग उस रात को नगरशेठ और उनकी धर्मपत्नी शोभना सांसारिक कार्य से दूसरे गाँव में गए होने से हवेली में उपस्थित नहीं थे ।

थे मात्र अमर, सौरभ, सुलक्षणा और ६-८ साल की उंमर के **देव** और **केतु** नाम के दो बालकुमार !

लुटेरो ने तिजोरीवाले रुम को ढूँढ लिया । वहाँ बँधी हुई जाली को तोड़कर उन्होंने अंदर प्रवेश किया । दीपक के प्रकाश में वे रुम में आगे बढ़ने लगे।

परंतु यह सब कुछ करने में थोड़ी आवाज़ हुई और खंड में सोया हुआ अमर उठ गया । उसकी डायी आँख स्पन्दन करने लग गई थी । वह किसी भी वजह से डर गया । लंबा विचार किए बिना ही बहार निकल गया...

देखा तो तिजोरी के खंड की जाली तूटी हुई थी और खंड खुल्ला था । उसे अशुभ का ख्याल आ गया...

हालाँकि कोई भी बुद्धिमान पुरुष ऐसे अवसर पर वहाँ अकेले जाने की हिंमत नहीं करेगा, वह समझता ही है कि, 'चोर-लुँटेरो के पास शस्त्र तो होते ही है, और वह खुद अकेला हो तो उन्हें मात नहीं कर सकता...?' परंतु कौन जाने जल्दी-जल्दी में, भय में, निंद की असर में... यह बात अमर के ध्यान में न आई।

बहार लटकाई हुई तलवार को हाथ में लेकर वह त्वरीत ही तिजोरी के खंड में दौड़ते हुए पहुँचा ।

''कौन है ? कौन है ?'' बोलते हुए उसने खंड में प्रवेश किया । दीपक के प्रकाश में उसने देखा कि ८-९ बुकानीधारी लुँटेरे तिजोरी को तोड़ रहे थे ।

स्वभान भूलकर अमर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा । तलवार को मारने के लिए उठाई, परंतु लुँटेरे तो सावध हो गए थे । और वैसे भी नौ लोगों के सामने बिचारा अकेला अमर करे भी क्या ?

एक तलवार अमर के पेट में घुसकर आरपार उतर गई...

एक तलवार से उसका बाया हाथ कट गया,

एक तलवार ने उसके पैर की जाँघ को काँट दिया ।

भयंकर तरीके से चींखता अमर जमीन पर ढल गया ।

यह सभी शोर-बकोर में सौरभ की निंद भी उड़ गई थी । उसमें भी अंत में खुद के भाई की भयानक चीख सुनकर उसका दिमाग सुन्न हो गया । वह भी गंभीर भूल कर बैठा...

''भाई ! क्या हुआ ?'' बस इस विचार में वह आवाज़ की दिशा में आगे बढ़ा ।

तिजोरी के खंड की ओर उसने भी दौड़ लगाई...

परंतु अभी लुँटेरे भी आक्रमक... अधीरे बने थे ।

तलवार का एक ही प्राणनाश करनेवाला झटका सौरभ के गले पर गिरा और शरीर पर से मस्तक अलग हो गया ।

परंतु अभी भी आफतों का साया हटा नहीं था ।

कर्मराजने आज सोभागचंद शेठ के परिवार पर हद बहार का सीतम बरसाने का जाने कि दृढ संकल्प कर लिया था ।

आठ वर्ष की उंमर के दो देवकुमार देव और केतु भी यह भयानक चीखें सुनकर उठ गए थे । निर्दोष दो बालक भी ''पिताजी !...?'' करते हुए बहार दौड़े। तिजोरी का खंड पास में ही था । दोनों की दृष्टि धरती पर बिछी हुई दो लाशों पर गई । हवेली में दीपको का उजाला अच्छा-खासा था । इसलिए ही बालकों को खुद के अत्यंत प्यारे पिता और काका को पहचानने में वक्त नहीं लगा ।

नादान बच्चें !

स्नेहाधीन बच्चें !

''तुम लोगों ने हमारे पिताजी को मार दिया । तुम पापी हो, तुम हत्यारे हो, हम तुमको नहीं छोड़ेगे...'' बोलते-बोलते वे दोनो लुँटेरो की ओर भागे, लुँटेरों को मुक्के मारने लगे ।

लुँटेरों को वैसे तो उन बच्चों को मारने की जरुरत नहीं थी, परंतु यह सभी दया की परिणति उनमें कहा से हो । वे तो ऐसे अवसर पर जो कोई विघ्न बनकर आए, उसे काँट-मारकर ही आगे बढ़ते है ।

और वैसा ही हुआ...

दो बच्चों की परेशानीयाँ और चीखों से त्रस्त होकर कालसिंह ने दो गालियाँ देकर जोर से दोनों बच्चों के गलों पर तलवार को फिरा दिया ।

''नहि...नहि...'' एक भयंकर आवाज़ उठी ।

नहीं ! वह चीख बच्चों की नहीं, परंतु वे बच्चें जिसके जीवन के प्राण थे, जिसकी आँखों के दो तारे थे, जिसके हृदय की धड़कन थे, वैसी माता सुलक्षणा की चीख थी ।

दिन के दौरान घर के कार्यों में व्यस्तता होने की वजह से सुलक्षणा को ज्यादा थकान लगी थी, इसलिए उसकी निंद जल्दी उडी नहीं थी । जभी दीयर सौरभ की भयंकर चीख उसने सुनी तभी ही वह जाग उठी थी । वह जल्दी से बाहर आई, तिजोरी के खंड की ओर रीतसर दौड़ी... परंतु उसकी नज़र के सामने ही दो देवकुमारों के, दो प्यारे संतानों के मस्तक उसने हवा में उड़ते देखे... शरीर से अलग होते हुए देखे ।

कैसे सहन कर सकती है एक सगी माँ... खुद की नज़र... सामने.. प्यारे संतानों के ऐसे घातकी अपमृत्यु को ?

बीस साल की भरयौवन उम्र को धारण करती वह सती ! पवित्र सुलक्षणा! नज़र के सामने खुद के पति का शब, दीयर का शब और दो बच्चों के मस्तक-शरीर को अलग हुए देखकर वह पागल-सी हो गई । चीखती हुई सुलक्षणा कालसिंह की ओर बढ़ी ।

ऐसे अवसर में बुद्धिबल बहेर मार जाता है... कुछ भी सुझता नहीं...

तन पर और मन पर आवेश सवार हो जाता है...

और यही बना सुलक्षणा में !

''नीच ! पाखंडी ! हत्यारा ! घातकी ! मैं तुझे जीने नहीं दूँगी । तुने मुझे विधवा बनाई । तुने मुझे वन्ध्या बनाई...'' क्रोधावेश में मर्यादा बिन वाचा को उच्चारती सुलक्षणाने कालसिंह पर मुट्ठियों की बोछार की । परंतु यह तो था जंगली डाकु !

बिचारी बीस साल की अबला की... उसके सामने क्या शक्ति !

पहले तो कालसिंह, उसके भी तलवार के प्रहार से दो टुकड़े कर देना चाहता था...,

परंतु...,

बिचारी अबला पर अभी भी एक भयानक आफत का साया मँडरा रहा था।

वह आफत थी... शील की !

हाँ ! आर्यदेश के संस्कार को पाई हुई स्त्री के लिए सबसे ज्यादा से ज्यादा किंमती चीज होती है, **शील** ! शील के लिए किसी भी कक्षा का भोग वह दे सकती है । पति-पुत्र से ज्यादा भी उसे अपना शील प्यारा होता है । अरे ! प्राण से भी ज्यादा प्यारा होता है ।

दीपक के झगमगते उजाले में कालसिंह सुलक्षणा के सोहावने रुप को देख चुका था । और उसमें आवेश के मिलने से उसे वह रुप अत्यंत आकर्षक लगा था । उसके रोम-रोम में विकारो ने वास कर लिया था । तलवार बाजु पर फेंककर दो हाथों से उसने मजबुताई से सुलक्षणा के दो हाथ पकड़ लिए ।

''रस्सी लाओ ! जल्दी करो ! झटपट करो !''... कालसिंह ने जोर से आवाज़ लगाई और साथीदारों ने तुरंत ही धन के थैलों को बाँधने के लिए लाई हुई रस्सी हाजिर की । जल्दी से ही सभी ने साथ मिलकर सुलक्षणा के दोनो हाथ और फिर दोनों पैर कचकचाकर बाँध दिए । हील भी न सके और चल भी न सके वैसी कठिन परिस्थिति में सुलक्षणा आ गिरी । उसके मुहँ में कपड़े को गोंध दिया गया ताकि वह चिल्ला न सके ।

''चलो, आज तो संपत्ति से भी ज्यादा अच्छा माल हाथ लगा है... जल्दी भागो ।'' बोलकर कालसिंह ने सुलक्षणा को उठाया और त्वरीत वहाँ से

नौ–दो–ग्यारह हो गया । नीचे उतरकर थोड़े दूर रखे हुए घोड़े के पास पहुँचा ।

घोड़े पर सुलक्षणा को डालकर खुद भी घोड़े पर सवार हो गया । तब तक तो दूसरे भी आठ साथीदार मुद्दे माल को लेकर आ पहुँचे ।

सुलक्षणा को अभी पता चला कि 'वह कितनी गंभीर भूल कर बैठी है। खुद पर कितनी भयानक आफत आई है ।' वे लुँटेरे उसे भी लुँटकर ले जा रहे है।

अभी शील कैसे बचेगा ?

९ सिंहो के चंगुल में आई हुई हिरनी की क्या हालत ?

९ कुत्तो के बीच में गिरी हुई कबुतरी तहस–नहस न हो, क्या यह शक्य है ?

लुँटेरों की बात–चीत से उसे पता चल ही गया कि, 'वे विकारी बने है। वे मेरी लाज को लुँटना चाहते है ।'

सुलक्षणा के मस्तक पर बिजली गिर पड़ी । पति और दो लाडले संतानों का मृत्यु तो उसके लिए भयानक विपत्तिरुप था ही, परंतु उससे कितने ही गुणा अधिक चिंता उसे परेशान करने लगी ।

''ये नीच पुरुषों के बीच में मेरा क्या होगा ? वे तो मुझे मरने भी नहीं देगे । उनकी तगतगती आँखों में मात्र वासना ही दिख रही है ।''

खुद के भविष्य की चिंता से ही उसका शरीर का प्रत्येक अंग काँपने लगा।

''ओ भगवान् !''... उसके हृदय में से भगवान के नाम का आर्त्तनाद प्रगट उठा ।

और उपरांत में लुँटेरों की परस्पर की बिभत्स बातें !...

''सरदार ! हमारा नियम है कि लुँट में जो मिले, उन सभी का समान बँटवारा करना । फिर वह धन हो, भोजन हो या स्त्री हो । इसमें हमें भी भाग मिलना चाहिए ।'' साथीदारों ने कहाँ ।

और वो कालसिंह ! ''पहली बारी मेरी ! फिर तुम्हारी !''... कैसे हलके शब्द उच्चारे उसने !

उस प्रत्येक शब्द पर सुलक्षणा का भय बढ़ता ही जा रहा था । ''भगवान!

मोत दे दो वह मंजुर है । परंतु शीलभंग मंजुर नहीं है... प्रभो ! करुणा कर... ऐसा भयानक जुल्म मेरे पर क्यों ? मेरा क्या गुन्हा ! मेरी क्या भूल !'

लुँटेरे एक पर्वत की विशाल गुफा के पास पहुँचे ।

गुफा अंदर से बहुत बड़ी, लंबी, चौडी थी ।

कालसिंह ने सुलक्षणा को गुफा के अंदर रखी । और फिर वह गुफा के दरवाजे के पास गया...

''तुम सब बहार ही खड़े रहना । आधे घंटे तक कोई भी अंदर मत आना..''

उसके शब्दों को सुनकर सुलक्षणा ध्रुज उठी । वह उसका मर्म समझ गई थी । परंतु वह करे क्या ?

सख्त बँधी हुई वो कुछ भी कर सके वैसी परिस्थिति ही नहीं थी ।

प्रत्येक पल उसका डर बढता ही जा रहा था ।

साथीदारों को बहार रखके कालसिंह फिर से अंदर आया । वह खुद के साथ एक छोटी-सी मशाल लाया था । गुफा में अल्प उजाला हो इसलिए उसने मशाल प्रगटाई...

और...

दूसरी ओर नगरशेठ की हवेली में प्रजाजन इकट्ठे हो गए थे । माता शोभना की चीखें भलभले हृदय को कंपा दे वैसी थी । सोभागचंद शेठ शोभना को शांत रखने का निष्फल प्रयास कर रहे थे । परंतु आन्तरिकस्तर पर उनके भी आघात का पार नहीं था ।

प्रात: सबेरे जभी वे बहार गाँव से घर पें वापीस आए, तभी वहाँ का दृश्य देखकर ही दोनों बेहोश हो गए थे । उस दौरान नौकर भी आ गए थे । हवेली के विशाल दिवान खंड में चारों लाशों को बिछाकर उस पर सफेद कपड़ा ढाँक दिया गया था । पवनीय गति से चारो ओर यह समाचार पहुँचने की वजह से हजारों लोग हवेली की ओर उमटे थे । शेठ के प्रति के लगाव से ही सभी वहाँ खिंचे आए थे।

परंतु ऐसे में आश्वासन देने की भी हिंमत किसी के पास नहीं थी । ''कौन-से शब्दो में आश्वासन दिया जाए ?'' यह किसी को भी पता नहीं चल रहा था । ''जो जन्मता है, वो मरता ही है । अभी उसका शोक करने से क्या ? जो होना

था वह हो गया...'' ऐसे बोलने की इच्छा बहुत को थी । परंतु सभी समझते ही थे कि, ''यह बोलना आसान है, परंतु उसका आचरण तो लगभग अशक्य है । यह तो जिस पर बीतती है, उसे ही मालूम पडता है...''

'सुलक्षणा का क्या हुआ ?' इसका किसी को भी पता नहीं था परंतु तिजोरी तूटी है, धन चुराया गया है... इसलिए लुँटेरे धन और सुलक्षणा को भी उठा ले गए होगे... ऐसी कल्पना सभी के मन में आ चुकी थी ।

सोभागचंद का क्रोध आसमान को छू रहा था । खुद के संपूर्ण परिवार के सत्यनाश को निकालनेवाले लुँटेरो को वह कोई भी प्रकार से मार देना चाहता था। मन में रौद्रध्यान पराकाष्ठा पे पहुँचा था ।

''महाराज हरिदत्त पधार रहे है'' जोर से छड़ी पुकारी गई और सोभागचंद की दृष्टि दरवाजे की ओर गई । राजवी हरिदत्त अंदर पधार रहे थे ।

ऐसे भी नगरशेठ के लिए सभी को बहुत सन्मान था । राजवी को भी उनके लिए बहुत आदर था । राज्य के हरेक कार्य में नगरशेठ सभी प्रकार की सहाय करते थे । राजवी के वे प्रियपात्र थे । इसलिए ही खुद महाराज भी यह समाचार सुनकर बहुत दु:खी हुए थे । तुरंत ही वे नगरशेठ को आश्वासन देने आ पहुँचे थे ।

राजवी को देखते ही सोभागचंद शेठ के मन में दबा हुआ आक्रोश अग्नि के गोलों के जैसे मुख द्वारा बहार बरसने लगा । सोभागचंद को औचित्य का भी भान नहीं रहा । सामने नगर के राजवी खडे है ? यह भी विचार नहीं आया। ''आपके नगर की यह व्यवस्था है ? मेरे लड़के, मेरे पौत्र कटकर मर गए तब तक आपके सैनिक क्या सो रहे थे ? नगररक्षा की जिम्मेदारी किसकी है ? आपको सिर्फ खा-पी के मौज-मजा ही करनी है ? हमने नगर के लिए बेहद भोग दिया, उसका यह फल हमे मिला ? धिक्कार है मुझे कि मैंने ऐसे बलहीन राजा का शरण स्वीकारा।

सुन लो, महाराज हरिदत्त ! मेरे मरे हुए पुत्र-पौत्र तो फिर से जिंदा होनेवाले नहीं हैं, परंतु जिन हत्यारों ने यह कुकर्म किया है, वे सभी मुझे जिंदे या मुर्दे चाहिए। जिंदे पकड़ोंगे तो उन सभी को मैं फाँसी दूँगा । मरे हुए पकडोंगे तो हरेक की लाश पर थुककर, जुते मारकर मैं मेरा बदला लूँगा । ऐसा होगा तो ही

मुझे संतोष होगा।

यह जिम्मेदारी तुम्हारी है । आप उने जिंदा या मुर्दा मेरे पास हाजिर करो, नहीं तो...?''

आगे क्या बोलना ? यह नगरशेठ समझ न सके । राजवी ने खुद के इस घोर अपमान को गले उतार दिया । क्योंकि वे भी समझते ही थे कि ऐसी परिस्थिति में नगरशेठ इससे भी ज्यादा आक्रोश प्रदर्शित करे, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं था।

''परंतु वे लुँटेरे कौन थे? उन्हें कैसे पकड़ा जाए ?'' यह सभी... वितर्को में महाराजा हरिदत्त चिंतामग्न हो गए ।

वहाँ तो दूर से घोड़ों की ''तबडाक... तबडाक...' आवाज़ सुनाई देने लगी । राजवीने और शेठने झरुखे में से बहार नज़र की, तो जंगल की दिशा से आठ-दस घोडे सवार पूर्णवेग से इस ओर आते हुए दिखाई दे रहे थे । 'यह कौन होंगे?' उत्कंठा से सभी उस ओर देखते रहे ।

घोडेसवार नज़दीक आते गए । उसमें एक घोडे पर कोई स्त्री बैठी थी । मस्तक सही ढंग से ढका हुआ था । परंतु शेठ को तो दूर से ही पता लग गया कि, 'यह तो मेरी पुत्रवधु सुलक्षणा है !' साथ में रहे हुए पुरुष बुकानीधारी थे । लुँटेरे जैसे ही दिख रहे थे ।

शेठ और राजा जल्दी से नीचे उतर आए । शोभना भी यह नई घटना देखकर पलभर के लिए दिग्मूढ हो गई । वह भी शेठ के साथ नीचे उतर गई ।

हवेली के चोगान में हजारों लोग इकट्ठे हुए थे । राजा और शेठ भी वहाँ पहुँच गए । सैनिक सावध हो गए । दस घोडो ने अंदर प्रवेश किया कि त्वरीत ही सैनिकोने उन्हें घेर लिया । ९ पुरुषों को तुरंत ही पकड़ा गया । उनके हथियार छिन लिए गए ।

आश्चर्य तो यह था कि वे ९ लुँटेरे जाने कि सामने से ही गिरफ्तार होने के लिए आए हो वैसे उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया । जाने कि आत्मसमर्पण करते हो वैसे उन्होंने खुद के हथियार दे दिए । उन सभी के मुख पर खेद और आनंद का मिश्रित भाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था ।

सुलक्षणा घोडे पर से नीचे उतरी, सास-ससुर के पास गई । उनके पैर में गिरी और साक्रंद रुदन करने लगी । पति और पुत्रों के विरह के आँसु टपक-टपक

टपकने लगे । सोभागचंद भी रो पडे । महातकलीफ से सिर्फ दो शब्द बोल पाएँ ''तू सुरक्षित तो है ना, बेटा ?'' उनका आवाज़ रूंध गया ।

रोती पुत्रवधु को आश्वासन देकर उन्होंने लुँटेरों की ओर नज़र की । उनकी आँखो में खुन्नस तर आया । चार लाशें फिर से उनकी आँखों में तरने लगी । उनकी क्रूरता से भरी की गई हत्या के दृश्य उनकी आँखों में एक के बाद एक झपकने लगे ।

''बेटा ! ये लुँटेरे ही अपने संतानों के हत्यारे है ना ?'' शेठ ने पुत्रवधु को प्रश्न किया । हकार में मस्तक को हिलाने के अलावा सुलक्षणा कुछ भी उच्चार न पाई । उसे बहुत–सी बाते करनी थी, परंतु अभी की परिस्थिति को देखकर वह बहुत असमंजस में गिर गई थी ।

''राजन् ! यह सभी को फाँसी की सजा मिलनी चाहिए । अथवा जिस तरीके से उन्होंने मेरे संतानों के मस्तक शरीर पर से उडाए, उसी तरह उनके मस्तक भी उड जाने चाहिए । और सजा भी एकांत में नहीं, प्रत्यक्ष में दी जाए । हजारों लोग देखे वैसे उन्हें शिक्षा की जाए ।''

सोभागचंद जाने कि स्वयं ही राजा न हो, वैसे आक्रोश के साथ आदेश की भाषा में बोल रहे थे । वे दूसरा कुछ भी विचारने के लिए तत्पर ही नहीं थे। 'वैर का बदला लेना' यह एक ही नाद उनके रोमरोम में गुँज रहा था ।

परंतु राजा समझदार थे, न्यायी थे । और सबसे ज्यादा आश्चर्य तो उन्हें ये हुआ था कि, 'यह सभी लुँटेरे सामने चलकर शरण में क्यों आए ? यदि वे भाग ही गए थे, तो वापस आकर इस तरह सामने से गिरफ्तार हो जाना, मरने तैयार हो जाना... ऐसा उन्हें किसने सुझाया ? क्या इसमें कोई साजीश है ? परंतु ऐसा तो कुछ दिखता नहीं ।'

राजाने तत्काल तो उन सभी को पकड़कर राजदरबार में भेज दिया । शेठ को वचन दे दिया कि, ''कल दुपहर को १२ बजे भरदरबार में यह ९ लोगों को फाँसी देने में आएगी । आप हाजर हो जाना ।''

और राजाने राजदरबार में जाकर कालसिंह को एकांत में पूछा कि ''सच बोल ! सच्ची हकीकत क्या बनी है? तेरा इस तरह समर्पित हो जाना मुझे अति आश्चर्य में डाल रहा है ।''

और

राजा के पैरो में गिरकर कालसिंह जोर जोर से रोने लगा । वह लुँटेरा उस समय सचमुच संत बन गया ।

''राजन् ! मैंने अतिघोर पाप किए है । पैसो की लालच में हम नौ लोगों ने हवेली में हमला किया । दो भाईयों को और दो बच्चों को रहेंस दिया । वासनासे पीडित होकर सुलक्षणा को हम उठाकर ले गए । उसे गुफा में डालकर मैंने मेरे साथीदारों को आधे-पोणे घंटे तक अंदर नहीं आने की बात बता दी ।

मैं अंदर गया । थोड़ा प्रकाश हो इसलिए मैंने मशाल प्रगटाई । थोड़ा थोड़ा उजाला संपूर्ण गुफा में प्रसर गया । मैंने सुलक्षणा की ओर देखा । वह बिचारी कबुतरी की तरह काँप रही थी । उसके मुख पर भय का साया छाया हुआ था । परंतु यह सब चीजें मेरे जैसे निष्ठुर व्यक्ति को कैसे पिगलाए ? मैं वासनाग्रस्त बन चुका था ।

परंतु,

मेरा प्रचंड भाग्योदय !

मेरा काल पक गया था !

मैं उस महापाप से बच गया !

मैं शैतान मिटकर मानव बना !

बनाव ऐसा बना कि शुरुआत में मुझे गुफा में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था । आँखे भी अंधकार में जमी नहीं होने से मशाल का उजाला होने के बावजूद भी थोड़े समय तक मुझे कुछ विशेष दिखाई नहीं दिया । परंतु उसके बाद मेरी नज़र अचानक ही गुफा के एक भीतर के स्थान पर पड़ी । वहाँ से चमकादर का आवाज आने से मेरी नज़र उस ओर आकर्षाइ थी । परंतु उस स्थान का दृश्य देखकर मैं सड़क ही रह गया ।

वहाँ एक मानव खड़ा था ।

अच्छी बड़ी उसकी काया...

शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं !

अरे ! दो बड़े नाग उसके शरीर से लिपटे हुए थे ।

परंतु उसके मुख पर किसी भी प्रकार के भय की रेखा नहीं थी ।

नही ! वे निंद में नही थे, परंतु संपूर्ण सभान थे । उनकी आँखें खुली थी, परंतु नीची ढली हुई थी ।

अहोहो !

क्या उनकी सौम्यता !

क्या उनकी पवित्रता !

डरावनी रात को यह मानव यहाँ क्या करता होगा ? क्यों यहाँ खडा होगा?

मुझे आश्चर्य हुआ । भीतर में न जाने क्यों परंतु उस मानव के प्रति मुझे लगाव उत्पन्न होने लगा । मैं उस ओर मुड़ा ।

सुलक्षणा ने मेरे पैरों को उल्टी दिशा में जाते हुए देखकर आश्चर्य अनुभवा। वह भी उसी दिशा में देखती रही कि जहाँ वह महामानव खड़ा था । उसके दोनों हाथ-पैर बँधे हुए होने से घिसट-घिसटकर वह भी उसी दिशा में आने लगी । मुझे महसूस हुआ कि उसे भी इस मानव के दर्शन से कोई अलग-अजीब तरह की अनुभूति होने लगी थी ।

मेरे विकार कौन जाने क्यों परंतु संपूर्णत: शम गए, सुलक्षणा का विचार ही मन में से निकल गया ।

मैंने उस मानव से पृच्छा की कि ''आप कौन हो? भाई ! यहाँ क्यों खड़े हो ?'' मेरी भाषा में अत्यंत सौम्यता, नम्रता अपने आप ही प्रगट चुकी थी ।

मुझे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला ।

''महापुरुष ! बोलो तो सही, कि आप कौन है ? क्यों आप यहाँ खडे हो?..'' मैंने फिर से विनम्र होकर प्रश्न किया ।

बहार खडे हुए साथीदार मेरी यह आवाज़ सुनकर आश्चर्यचकित हुए । उन्हें लगा कि, ''अंदर तीसरा भी कोई है ।'' वे त्वरीत ही अंदर आ गए । मेरे पास आकर खड़े रहे ।

मैंने कहा, ''देखो तो सही ! इस महापुरुष को ! राजकुमार जैसा अद्‌भुत अनोखा-अनुपम रुप ! क्या उनके मुख पर की प्रसन्नता ! क्या उनके मुख पर छाई हुई शांति !

लग रहा है कि हम संपूर्ण ही उल्टे रस्ते पर है । लुँटफाँट करना, निर्दोष

जीवों को काँट देना, मासुम बच्चों को भून देना, पतिव्रता सती के शील का भंग करना, यह सभी घोर पापो से हमने क्या सुख पाया ? हम कितने चिंतातुर है । उसके बदले इस मानव को तो देखो ! ऐसी अंधेरी रात को संपूर्णत: अकेला-अटुला खडा है । उसे किसी का भी साथ नही है, तो भी वह मस्त है ! उसके देह पर साँप लिपटे हुए है, तो भी वह निर्भय है ! वह सब कुछ देख रहा है, सुन रहा है... तो भी उसे अपनी बात का उत्तर देने जितनी भी फुरसद नही है ।

कौन होगे ये महात्मा !

जो हो वो, परंतु वे मेरे जीवनदाता है !

अहो ! मेरे मातापिता कैसे थे ! भले हमारा कुल नीचा ! परंतु मेरे पिताजी कभी भी परस्त्री की ओर नज़र भी नहीं करते । मुझे बहुत बार कहते कि, **''परस्त्री मात तुल्य ।''**

हलके कुल में भी उन माता-पिता में ये सब संस्कार आत्मसात् हुए थे।

परंतु मैं कुलांगार पका । मैंने यह लुँटफाँट - बलात्कार का रास्ता अपनाया। कितनी ही सतीयों के सतीत्व को मैंने नाश किया । हाय ! क्या होगा मेरा ?

कुछ नहीं ! शाम का खोया यदि सुबह को घर आ जाए तो वह खोया नहीं कहलाता !

मैं अभी यह सभी पापों को छोड़ रहा हूँ । मेरी तो तुमको भी सलाह है कि यह पापमार्ग को तिलांजली दे दो । इसमें कोई सुख नहीं है । दूसरे को दु:ख देना और खुद दु:खी होना... बस ! इसके सिवा इस मार्ग में दूसरा कुछ नहीं है। फिर तो जैसी तुम्हारी इच्छा !''

मेरा स्वर आर्द्र हो गया । मैंने देखा कि वे आठ साथीदार भी पश्चाताप के मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे । किसी ने भी मेरी बात का प्रतिकार नहीं किया । मुझे १००% लगा कि **यह सब मेरा प्रभाव नहीं, परंतु इस महापुरुष का प्रभाव है ।**

मैं उनके चरणों में घुंटने पर गिर पड़ा । मेरी आँखों में कृतज्ञता के चोधार आँसु बह रहे थे । रोते-रोते मैंने उस महामानव को प्रार्थना की कि, ''ओ भगवान! भले आप मेरे साथ मत बोलो, परंतु मैं तो आपसे बोलने ही वाला हूँ । आप कौन हो ? इस बात का तो मुझे पता नही है, परंतु आप तो मेरे भगवान हो, यह बात

तो मैं नक्की मानता हूँ । आज आपके दर्शनमात्र से मेरी कामवासनाए, मेरी हिंसकता, मेरी धनलंपटता बोरे-बिस्तर उठाकर भागी है ।

...प्रभो ! आज मैं धन्यातिधन्य बन गया ।''

मेरा रुदन, मेरे आर्द्र शब्द मेरे साथीदारों को भी रुला रहे थे । अंतत: वे भी मानव ही थे ना ? जंगलीयात तो निमित्तो से आई हुई थी, वह दूर हो गई ।

मुझे अचानक सुलक्षणा की याद आई कि, 'वह तो बिचारी अभी भी बंधन में पडी है ।' मैंने त्वरीत ही उसके पास जाकर उसके बंधन खोल दिए । उसके पैर में झुककर माफी माँगी ।

''ओ बहन ! तेरे पति को और पुत्रों को मैं वापस कर सकु वैसी मेरी शक्ति नहीं है । उस पाप के बदले तुझे मुझे जो सजा देनी हो वह तू दे सकती है। ले यह तलवार ! और मेरे मस्तक को छेद दे । मुझे यह सजा भी मंजुर है । परंतु बहन ! तू अब निर्भय हो जा ! बिलकुल डरना मत ! मैं तेरा सगा भाई हूँ वैसा तू मानना।''

शील बच जाने के आनंद में सुलक्षणा पति-पुत्रों के विरह को भी बिसर गई । उसने मुझे क्षमा दी, मेरे जीवन के परिवर्तन के उपलक्ष्य में हर्ष प्रगट किया। ''इस शील की रक्षा करनेवाले एक मात्र यह महापुरुष ही है'' यह बात सुलक्षणा अच्छे तौर पर समझ गई थी । इसलिए ही उसे इस महामानव के प्रति अगाध सद्भाव प्रगट हो... यह स्वाभाविक ही था ।

परंतु हमने एक बात पर गौर से ध्यान दिया कि यह सभी प्रसंगो के दौरान उस महामानव की मुखाकृति में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ । वे सब कुछ देख-सुन रहे थे, तो भी उन पर इन सभी बातों की कोई असर ही नहीं थी ।

हमारे प्रशंसा के शब्दों से उनके मुख पर आनंद छाया हो, ऐसा भी नहीं बना।

एक ही रीत की सौम्य मुद्रा ! प्रशान्त आँखे ! थोडा स्मित को प्रसारता हुआ मुख !

मेरे साथीदार भी मेरी बातों में संमत हुए ।

और आज हमने आत्मसमर्पण कर लिया, हम मरने के लिए तैयार है । आप हमें कोई भी दंड करो, तो उसके लिए हम सभी ने तैयारी रखी ही है ।''

कालसिंह ने आश्चर्यजनक परिवर्तन की घडीयों का वर्णन किया ।

राजवी हरिदत्त आश्चर्यचकित हो गए । 'कौन होगा वह महामानव ? कैसी अनोखी होगी उनकी साधना ? जिनका दर्शन मात्र भी इन लुँटेरों को संत बना दे, वह व्यक्ति कैसी होगी ?' राजा को भी उन्हें एकबार देखने का मन हो गया । परंतु वह कैसे शक्य बने ?

राजा को हुआ कि, 'यह सभी को माफी दे दूँ । परंतु उन्होंने हत्या की है, यह तो हकीकत ही है । उपरांत में सोभागचंद मोत के सिवा दूसरी किसी भी सजा को मंजूरी नहीं देगा । उनका क्रोध शांत हो जाए, तो शायद सजा कम हो सकती है ।''

राजा ने कालसिंह से पूछा, ''सुलक्षणा ने तुम्हारे इस परिवर्तन की बात क्यों न की ? तुम्हारे ओर से क्यों उसने एक भी लफ्ज नहीं उच्चारे ?...''

कालसिंह ने जवाब दिया, ''वह किस तरह से हमारी ओर से बोले ? खुद के पति-पुत्रो के हत्यारों के लिए वह कुछ भी अच्छा बोले, तो प्रजा क्या समझेगी ? उसके सास-ससुर क्या सोचेंगे ? शायद वे उसके उपर ही शंका कर बैठेगे कि 'यह ही कुलटा लग रही है । लुँटेरों के द्वारा पति को मरवाकर रंगरेलियाँ उडाने निकली है ।''

कौन क्या सोचता है ? इसका कोई अंदाजा नहीं लगा सकते । और वहाँ जो गमगीनी का - आक्रोश का वातावरण था उसमें हमारी ओर से कुछ भी बयान करना उसके लिए अशक्य ही था ।''

राजवी भी इस बात में सम्मत हुए ।

अंतत: दूसरे दिन फांसी देने का निर्णय करकर राजवी खुद के राजभवन में गए, ९-९ लुँटेरों को बंदीगृह में डाल दिया गया ।

दूसरी ओर जैसे जैसे समय बीतता गया, वैसे वैसे सोभागचंद शेठ का दिमाग विचारो में मशगुल हुआ । 'लुँटेरे स्वत: ही शरण में आ गए, यह तो गज़ब की बात है ! परंतु ऐसा बना क्यों ?'

पत्नी शोभना के साथ शेठ सुलक्षणा के खंड में गए । देखा तो सुलक्षणा सुमसाम होकर बैठी थी । उसके संसार में अकेलेपन का साया छाँ चुका था । दोनों जन उसके पास गए । सास-ससुर को देखते ही सुलक्षणा सड़क खड़ी हो गई । दोनों को पाँव लगकर उन्हें उचित स्थान पर बिराजने की विनंती की ।

''सुलक्षणा ! मुझे यह कहे कि तुझे उठा ले जाने के बाद क्या हकीकत बनी ? लुँटेरे इस तरह सामने से आत्मसमर्पण करने के लिए क्यों तैयार हुए ? इन हेवानों के मन में भगवान का प्रवेश कैसे हुआ ?'' शेठ ने सीधे मुद्दे की बात चालु की ।

सुलक्षणा को लगा कि 'लुँटेरों को बचाने का यह अवसर है ।'

उसने अथ से इति तक की संपूर्ण बात कही । उसमें महामानव के दर्शन के पश्चात् लुँटेरों का हृदयपरिवर्तन, जीवन परिवर्तन, जोर जोर से रोना, खुद का छुटकारा... यह सभी बाते सुनकर तो शेठ भी विस्मित हो गए । इन हत्यारों के लिए तो उन्हें भी पलभर के लिए सम्मान हो उठा ।

''पिताजी ! मेरा सौभाग्य खत्म हो चुका है, वह फिर से वापस आनेवाला नहीं है । मेरे दो प्यारे बच्चे वापस आनेवाले नहीं है । परंतु उन लुँटेरों ने मेरे शील को सुरक्षित रहने दिया है ।

यही उनका सबसे बड़ा उपकार है । आज यदि वे पापी पवित्र बने है, तो क्या हम उन्हें क्षमा नहीं दे सकते ? भले, राजा को उन्हें जो शिक्षा करनी हो वो करे, परंतु फाँसी अटक जाए तो वे जी सकते है । जीकर ज्यादा अच्छे बन सकते है।

पिताजी ! सबसे ज्यादा दु:ख मेरे सिर पर तुटा है, तो भी मैं उन्हे क्षमा देने के लिए तैयार हूँ । आपका संसार तो पूर्णता के किनारे है, तभी मुझे तो संपूर्ण जिंदगी पुत्र-पति के बिना अकेले रहकर पसार करनी है । शुद्ध ब्रह्मचर्य पालना है । मेरे पर क्या बीत रही है, यह आप महसूस कर सकते हो, तो भी मुझे उन लुँटेरों को माफ कर देने की इच्छा हो रही है । क्योंकि वे पश्चात्ताप के सरोवर में स्नान करके पवित्र बने है ।''

सुलक्षणा ने दर्द से भरी आजीजी की ।

शेठ कुछ भी बोल न सके । ''मैं सोचूँगा'' कहकर उन्होंने वहाँ से विदाय ली ।

दूसरे दिन...

दुपहर को बारह बजे...

सोभागचंद शेठ, पत्नी शोभना और पुत्रवधु सुलक्षणा एक बड़े रथ में

आरूढ हुए । रथ राजमार्ग पे आगे बढने लगा । आज जाहेर में फांसी देने का निर्णय हो चुका था । हालाँकि शेठ पुत्रवधु की बाते सुनकर विचारशील तो हो चुके थे, परंतु उसके बाद वे कोई निर्णय पर आ सके नहीं थे । उन्हें उस महामानव का भी विचार बार-बार आ रहा था ।

रथ में बैठी हुई वह तीन व्यक्ति खुद-खुद के विचारों में खोये हुए थे ।

अचानक... सुलक्षणा रथ में खड़ी हो गई । ''पिताजी ! पिताजी ! देखो! राजमार्ग पर बराबर नज़र करो । सामने से कोई खुल्ले पैरो से चलकर आते हुए दिख रहा है ना ?'' सुलक्षणा हर्षावेग में जल्दी - जल्दी बोल गई ।

शेठ और शेठाणी ने खड़े होकर राजमार्ग पर आगे की ओर नज़र दौड़ाई। और... वे चकित रह गए । लंबी कायावाला, निर्वस्त्र देहवाला एक पुरुष धीरे-धीरे राजमार्ग पर चल रहा था ।

''पिताजी ! यही है वह महामानव ! जिसके प्रभाव से मेरे शील की रक्षा हुई । जिसके प्रभाव से शैतान संत बने । पिताजी ! रथ को रोको ! उन्हें वंदन करके जन्म को सफल कीजिए ।'' सुलक्षणा की आँखों में हर्ष के आँसु तर आए। इस तरीके से अचानक ही यह महामानव मिल जाएगे, इस बात की उसे कल्पना भी कहाँ से हो ?

रथ रुक गया कि त्वरीत ही सुलक्षणा नीचे उतरकर रीतसर दौड़ने लगी। महापुरुष के पास जाकर उनके चरणों में ढल पड़ी । कृतज्ञता का, उपकारीता का भाव उसकी आँखों में से आँसु के स्वरुप में नीतरने लगा । देखते ही देखते शेठ-शेठानी भी नज़दीक आ गए । महामानव अटक गए । परंतु कुछ भी बोले नहीं । अनुभवी सोभागचंद शेठ महामानव को देखते ही समझ गए कि ''यह कोई सामान्य मानव नही है । यह नक्की राजपुत्र है, और वैराग्य को प्राप्त कर संन्यास के पथ पर मुडे है ।''

''आप कौन से राजा के सुपुत्र हो, यह बताएगे ?'' शेठने प्रश्न किया । परंतु प्रत्युत्तर दे कौन ?

सुलक्षणाने कह दिया कि, ''यह मानव कुछ नहीं बोलेगे । उनकी साधना गजब कोटिकी है । उसमें उन्होंने संपूर्ण मौन स्वीकारा हो ऐसा लगता है । पिताश्री! अभी हमें उन्हें जाने देना चाहिए । भर दुपहर को गरमी में खुल्ले पैरो से उन्हें एक

ही स्थान पर खड़े रहने में कितनी तकलीफ़ होती होगी ?'' कहकर सुलक्षणा बाजु में सरक गई । शेठ-शेठाणी भी बाजु पर सरक गए ।

उस महामानव को आगे बढ़ते हुए तीनों देखते ही रहे ।

वहाँ ही उन्हें एक नई घटना देखने को मिली । उन्होंने देखा कि नगर का एक कसाई सामने से आ रहा था । उसने इस महामानव को देखा और जाने कि वह उसे पहचानता हो वैसे एकदम हर्ष में आकर ''प्रभु ! प्रभु !'' बोलते हुए तापसंतप्त धरती पर साष्टांग दंडवत् लंबे होकर झुक गया । तुरंत ही खड़े होकर बाजु पर हट गया ।

शेठ को आश्चर्य हुआ । 'यह कसाई इस महापुरुष को पहचानता होगा?' ऐसा सोचकर उन्होंने कसाई को पास में बुलाया । ''तू इनको पहचानता है ? यह कौन है, इस बात का तुझे पता है ?''

''नही, शेठजी ! ऐसे तो नाम-ठाम से पहचानता नहीं हूँ । परंतु उनके काम से बराबर पहचानता हूँ । भले भले लोगों के दिमाग को बदलने का अपूर्व पराक्रम इस मानव के पास है । वह कुछ भी नहीं करते, तो भी बहुत कुछ करते है ।

थोड़े समय पहले की ही बात है ! एक वृषभ को पकड़कर मैं इस ही रास्ते से कतलखाने में उसे कटवाने ले जा रहा था । कोई भी तरीके से वृषभ को ख्याल आ गया कि 'वह मौत के मुख में जा रहा है ।' और... उसने धमाल मचानी शुरु की । एक डग भी वह आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं हुआ । उसके गले में बँधी हुई रस्सी मेरे हाथमें थी । मैंने उसे आगे चलाने के लिए चाबुके मारी, वह चिल्लाया, उछला.... परंतु आगे तो एक डग भी नहीं बढ़ा । मैं भी थक गया, त्रस्त हो गया। मैंने गुस्से होकर जोर जोर से लकडीयों के प्रहार शुरु कर दिए । परंतु वह बैल तस का मस नहीं हुआ ।

बस... उस ही अवसर पर यह महामानव सामने से आते हुए दिखाई दिए। मुझे दिखे, उससे अधिक उस वृषभ को दिखे । बैल टगर-मगर उन्हें देखने लगा, एकदम शांत खडा रह गया । मुझे भी आश्चर्य हुआ ।

बस... वह महामानव हमारे समीप से पसार हुआ, तब तक बैल उन्हें देखता ही रहा, और जैसे ही वे पसार हुए कि त्वरीत ही वृषभ स्वत: ही आगे चलने

लगा । जाने कि सामने से ही कतलखाने में कट जाने के लिए न जाता हो । मेरे बहुत प्रहार भी जिसे आगे बढ़ा न सके, वह अभी किसी भी तरीके के प्रतिकार के बिना आगे बढ़ने लगा । जाने कि उस महामानव के मौन में भी उस बैलने उपदेश सुन लिया हो कि ''जीव ! पाप किए है, तभी ऐसे दारुण दुःख सहन करने का अवसर आया है । अभी आहटे करके नए कर्म क्यों बाँध रहा है ? सब कुछ सहन करते जा.. कर्म खपाते जा...''

और वह मौन उपदेश उस बैलने ग्रहण कर लिया हो, वैसी परिस्थिति का सर्जन हुआ ।

मेरा मन बहुत आश्चर्य अनुभव रहा था । मैं अटक गया । बैल को मारने का विचार मैंने बदल दिया । वृषभ की रस्सी को पकड़के मैं इस महात्मा के पीछे ही उनके मार्ग पर गतिशील हो गया । वे बहुत आगे निकल गए थे, परंतु मुझे लग रहा था कि, 'वे शायद जंगल में जाकर वहाँ रुकेंगे ।'

इसलिए मैं और वृषभ नगर की हद को पसार करके जंगल में पहुँचे । मेरा अंदाजा सच निकला । एक वृक्ष के नीचे वे महात्मा ध्यान में खड़े थे । हम सभी के प्रत्येक रोम में शीतलता का अनुभव हो, वैसी उनकी मुखाकृति !

पैर में गिरके मैंने कहा कि, ''भगवान ! इस वृषभ को तो मैं छोड़ रहा हूँ। परंतु मेरा धंधा ही कतल का है । इसलिए संपूर्ण हिंसा तो मैं बंध नहीं कर पाऊंगा, तो भी आपको मैं वचन देता हूँ कि यदि दूसरा धंधा मुझे मिल जाए, तो यह हिंसा का धंधा मैं छोड़ दूँगा । यदि दूसरा धंधा नहीं मिलेगा, तो भी इस धंधे में कम से कम हिंसा हो वैसा प्रयत्न तो नक्की ही करूँगा ।''

मैं तो चकित ही रह गया । उस बैल के आँखों में से सचमुच आँसु टपकते हुए मैंने देखे । वह खुद का अहोभाव प्रगट कर रहा था । पशुओ में भी ऐसी समझ प्रगट सकती है, यह तो मैंने पहली बार ही देखा ।

नगरशेठ ! इतना परिचय मुझे इस महापुरुष का है । उसके बाद जभी भी मुझे वे दिखते है, तब मैं साष्टांग दंडवत् प्रणाम करना भूलता नहीं ।

चलो, शेठजी ! मुझे देरी हो रही है, आपको भी देरी होती होगी । मैं निकलता हूँ ।'' कहके कसाई जल्दी से आगे बढ़ गया ।

दो-चार पल तो सोभागचंद शेठ पत्थर की तरह जड बनकर वहाँ खड़े रहे

। यह सब नई-नई बातें उन्हें मीठी द्विधा करा रही थी ।

''सुलक्षणा ! तेरी कल की बात मुझे सच्ची लग रही है । हमें उन लुँटेरों को कम से कम अभयदान तो देना ही चाहिए...'' सोभागचंद बोले ।

सुलक्षणा आनंद में आ गई । ''पिताजी ! तो जल्दी चलो । ऐसा न हो कि हम देर से पहुँचे और वहाँ फाँसी दे दी जाए । उसके पूर्व ही हम वहाँ पहुँच जाते है।''

पति-पुत्रों के मौत के अति-दु:ख के बीच में भी सुलक्षणा प्रसन्न हो गई।

तीनों रथ में आरुढ हुए और रथ त्वरीत गति से आगे बढ़ने लगा ।

बजार के बीच में विशाल स्थान पर ९ फाँसी के मंच लटकाने में आए थे। सभी लुँटेरों के हाथ बाँध दिए गए थे । नगर के हजारों लोग इकट्ठे हुए थे । एक ओर उंचे मंच पर राजवी हरिदत्त बिराजीत थे । वक्त हो चुका था, परंतु राजवी के कहने से शेठ के आगमन की राह देखी जा रही थी । वहाँ तो शेठ का रथ धमधमाट करता हुआ नज़दीक आ पहुँचा । नीचे उतरकर शेठ सीधे ही राजवी के पास पहुँचे ।

''राजन् ! कल मैंने आवेश में आकर आपको बहुत अपशब्द कहे, यह सभी की मैं क्षमा चाहता हूँ । और मेरी ओर से बिनती करता हूँ कि यह सभी लुँटेरों की फाँसी की सज़ा रद्द कर देने में आवे । उसके सिवा की उचित सजा आपको जैसे ठीक लगे, वैसे आप कर सकते हो । मेरी पुत्रवधुने मुझे लुँटेरों की जीवनपरिवर्तन की बात की है ।''

''हाँ ! मुझे उसका पता है । लुँटेरेने मुझे भी सभी बातें कर दी है...?'' राजाने बीचमें ही खुद की जानकारी व्यक्त की ।

''ऐसा है ? तो उस महामानव की बात आपने भी जानी है, ऐसा है ना? वह ही महामानव हमें अभी ही राजमार्ग पर मिल गया । मैं उन्हें देखकर चकित-सा ही रह गया । सुलक्षणा की बाते सुनने के बाद और उस महात्मा के दर्शन के पश्चात् मेरा विचार परिवर्तित हो गया । इन सभी को फाँसी की सजा करने का मेरा आग्रह में रद्द करता हूँ । अब वह आपकी जिम्मेदारी है, आपको जो करना है वह करो । मैं कहीं भी विरोध नहीं करूँगा ।'' शेठने बात पूरी की ।

राजाने कहा, ''मेरी भी भावना यह ही थी । तुमने उसमें संमति देकर मेरा आनंद बढ़ा लिया है । अभी एक महत्त्व की बात ! उनकी सजा तो बाद में तय

करेंगे, परंतु तुमने अभी ही कहा कि वह महामानव तुम्हें रस्ते में मिले... तो उसका अर्थ यह कि वे यहाँ कहाँ आसपास में ही होंगे । यह सब सुनने के बाद एकबार उनके दर्शन करने की मेरी तीव्र तमन्ना है । वे कौन है ? कैसे है ? यह जानने की मुझे उत्कंठा है । तुम एक काम करो । अभी के अभी मुझे वहाँ ले जाओ । यह सभी नागरिक भी साथ में आएगे । हमारा भाग्य होगा, तो सभी को उनके दर्शन प्राप्त होंगे ।''

सोभागचंद शेठ को बात पसंद आई । रथ में बैठकर शेठ और राजा उस महामानव के मार्ग पर अग्रेसर हो गए । पीछे हजारों की जनमेदनी झडप से चलने लगी । यह अजब-गजब की घटना को सुनने के बाद सभी को दर्शन करने की उत्कंठा जन्मी थी । इसलिए ही दुपहर की धूप, भूख, तृषा सभी को भूलकर सभी एक ही दिशा में दौड़े जा रहे थे ।

देखते ही देखते राजा और लोग नगर की हद को पसार कर जंगल में प्रवेशे । थोड़े ही आगे चले कि सभी की आँखों को परम तृप्ति देनेवाला उस महात्मा का दर्शन सभी को प्राप्त हुआ । छोटे-से पर्वत पर वे महात्मा ध्यान में स्थित थे ।

कालसिंह आदि नौ लुँटेरे, सुलक्षणा, सोभागचंद शेठ, शोभना, हरिदत्त राजवी और हजारो मानव... अनिमेष नेत्रो से उस महात्मा को देखते ही रहे । राजवी को लगा कि 'मेरा जन्म सफल हुआ । इनको यदि निहारा नहीं होता, तो मेरा जीवन धूल समान होता ।'

सभी के मन में मात्र एक ही कुतुहूल घुमरा रहा था कि, 'आखिर यह महामानव है कौन ? उनका परिचय क्या है ?''

राजवी एक उंचे स्थान पर खडे रहे, हाथ उपर करके उन्होंने सभी को शांत किया ।

''सुनो नगरवासीओ ! आप गाँव-विदेश बहुत-सी जगहो पर घुमे होंगे । तो क्या आपमें से किसी को पता है कि यह महामानव कौन है ? कौन से कुल को इस महात्माने उजाला है ? कौन-सी माता को उन्होंने रत्नकुक्षि बनाई है ? कौन-से नगर को उन्होंने पवित्र किया है ? किसी को पता हो तो आगे आकर वह बोले।''

दो-चार पल सर्वत्र शांति छा गई । अचानक उस विराट मानवसमुदाय में से एक इन्सान धीरे-धीरे आगे बढ़ा । सिर पर तिलक, पेट के पास जनोई... आदि देखाव से वह ब्राह्मण लग रहा था । भीड में से सबसे आगे आकर वह पर्वत पर रहे हुए मानव को घूर-घूरकर देखने लगा । अभी भी उसे कुछ निर्णय करना था । इसलिए वह छोटे से पर्वत पर चढ़कर महात्मा के एकदम समीप जा पहुँचा । उनके मुख को घूर-घूरकर देखने लगा... बस, उसके बाद उस ब्राह्मण के मुख पर अद्‌भुत आनंद देखने को मिला । जल्दी से नीचे उतरकर थोड़े उंचे स्थान पर खड़े होकर, बड़े आवाज से, गज़ब के हर्षोल्लास के साथ उसने घोषणा की...

''राजन् ! **यह तो भविष्य में चरम तीर्थंकर बननेवाले ! क्षत्रियकुंड नगर के राजकुमार ! माता त्रिशला के प्रिय ! पिता सिद्धार्थराजा के पनोते पुत्र ! वर्धमानकुमार !**

हाँ ! हाँ ! वे वर्धमानकुमार ही है । इसमें कोई संदेह नहीं है । मैंने उन्हें पहले नज़रोनज़र देखा था । मात्र पहले राजकुमार की अवस्था में देखा था, अभी वे संपूर्णत: अलग ही दशा में है... इसलिए मुझे उन्हें पहचानने में देर लगी ।''

''परंतु ब्राह्मण ! तु क्षत्रियकुण्ड क्यों गया था ? तुझे जाने की जरुरत क्यों पडी ?'' राजाने सामने प्रश्न किया ।

ब्राह्मणने निजी जीवन की अनकही घटनाओं का बयान करना शुरु किया। ''राजन् ! बात थोडी लंबी है । आपको रस है इसलिए सुनो ।

इस चंपानगरीका मैं रहेवासी ! जात का ब्राह्मण ! ब्राह्मण तो ऐसे मांग-मांगकर ही जीते है, परंतु कौन जाने क्यों मेरे स्वभाव में मांगने की प्रवृत्ति अत्यंत कठिन हो पडी थी । किसी के पास भी किसी भी चीज़ को मांगने मैं मुझे बहुत शरम आती । यो भी घर में अत्यंत गरीबाई ! मेरी पत्नी ! एक लड़की और एक अपंग लड़का ! चार जन का परिवार ! कमाए बिना तो कैसे चले ? इसलिए सुबह से ही मैं भिक्षा माँगने के लिए चला जाता । सीधा समान जो मिलता, वह लेकर घर में आ जाता । उससे हमारा संसार चलता । थोडा कुछ पढ़ा-लिखा था, इसलिए यदि कोई पढ़नेवाला मिल जाए, तो उसे पढाने से भी थोडी कमाई हो जाती । परंतु मेरे पास मिलकत कुछ भी नहीं थी । रोज संग्रह कर, रोज खाना...

सालों तक यह ही क्रम चला... मेरे लडकी की शादी के लायक उम्र

हो गई । पत्नी ने कहा कि, ''अभी इसके लिए पति की खोज कीजिए । उसके हाथ पीले करवाईए ।''

यह नई बात आते ही मैं द्विधा में गिर गया । शादी करवाने में अच्छा खासा खर्चा होता ही है । उसकी शक्ति मेरे पास कहाँ थी ? लड़की के रुप-रंग-संस्कार अच्छे होने से एक अच्छे लड़के का भी प्रस्ताव आ गया... परंतु वह घर थोड़ा अमीर... इसलिए शादी में खुद का सन्मान कायम रहे इसलिए व्यवस्थित खर्चा करना जरुरी हो गया । लड़की को भी आणा तो देना ही पड़ता है ना ! अंदाज से लगभग १ लाख मुद्रा का खर्च मेरे नज़रों के सामने डोलने लगा। मेरी चिंता बहुत बढ़ गई।

और उसमें एक दिन नई तकलीफ आ गिरी । मैं घर पे पहुँचा, और मेरी पत्नी ने नई ही बात शुरु की, ''एक बहुत अच्छे वैद्य इस नगर में आए है, लोग उनकी प्रशंसा करते थक नहीं रहे । वह परगजु हैं । बिना मुल्य नाडी की जाँच करके देते है । यदि औषध लेनी हो तो उसके पैसे लेते है । मैं अपने अपंग लड़के को वहाँ ले गई । उन्होंने कहाँ कि यह तकलीफ बरसों की है । इसलिए जल्दी नहीं निकलेगी, परंतु थोड़ी उच्च कक्षा की दवाईयाँ यदि दो महिनो तक लेने में आवे, तो अवश्य यह चलता हुआ-दौड़ता हुआ हो जाएगा । ऐसे बहुत से अपंगों को मैंने दौड़ते हुए किए है । परंतु यह दवाईयाँ मेहँगी है । लगभग ५० हजार मुद्राओ का कुल खर्च होगा । आपकी तैयारी हो तो कहना ।''

पत्नी की यह बात सुनकर मेरी चिंता में बढौतरी हुई । 'लड़का अच्छा हो जाए वो तो बहुत अच्छा था, परंतु उसके लिए पैसा कहाँ से लाया जाए ?'

पत्नीने बात आगे बढ़ाई कि, ''आप कुछ भी करके इसकी व्यवस्था करो। लड़का भागता हो जाएगा तो बुढ़ापे में हमारा सहारा बनेगा । और लड़का भी यह बात सुनकर बहुत खुश हो गया है । और सुनो..., लड़की की सगाई के बारे में क्या सोचा है ? वह भी जल्दी से निपटाओ ।''

अकडाकर अंतत: मैंने मेरे हृदय की व्यथा निकाली । ''तुझे तो सिर्फ बोलना है । परंतु तुझे भान है कि इतनी सारी संपत्ति अपने पास है क्या ? रे ! हमें तो रोज़ रोज़ की चिंता होती है । उपरांत में तू मुझसे कह रही है कि उपरोक्त दो काम निपटा दो । परंतु तू ही बोल, देढ़ लाख जितनी मुद्राएँ हमें कहाँ से मिलेगी ?

सो मुद्राओं का भी मैं मालिक नहीं हूँ । और ऐसी गुणियल, स्वरुपवान लड़की को किसी भी तरह, किसी के भी साथ विवाहित करना भी उचित नहीं है । परंतु मैं क्या करूं ? इसका रस्ता तो मुझे कोई बताओ ?''

मैंने शब्द पूर्ण किए और वहाँ ही दिवाल के पीछे से मुझे रोने की आवाज़ सुनाई दी । हाँ ! वह मेरी लड़की रो रही थी । अच्छे पति को हाँसिल करने की उसकी भी तीव्र इच्छा थी । परंतु उसमें मेरी यह समस्या पत्थर के समान प्रतिबंधक हो गई थी । इसलिए ही वह बिचारी यह सुनकर रो पडी थी । मेरी नजर तभी पलंग पे लेटे हुए अपंग लडके की ओर गई, उसका मुख एकदम उदासीन हो गया । मेरे सदमें की सीमा न रही । प्यारे संतानोको मैं सुखी नही कर पाया ।

''देखो आप सभी दुःखी मत हो जाओ । मैं कल से नगर के श्रीमंतो के घर–घरो में जाकर भीख मांगूगा, शायद किसी का दिल पीगले और हमारा कार्य पूर्ण हो जाए । धीरज रखो ....''

मैंने आश्वासन तो दिया परंतु मुझे ही खुद पर विश्वास नही था । दूसरे दिन से मैंने श्रीमंतो के घरों में पैर घिसे । परंतु मुझे माँगना आता नही था, प्रस्ताव रखना आता नही था । और सबसे बडी बात यह कि मेरा पुण्य ही कम .... आठ दस, दिन हो गए, परंतु कुछ भी बदलाव नही हुआ । रोज जब में घर पर पहुँचता, तभी तीनो स्वजन मेरी राह देखकर ही बैठे होते । 'कुछ ठिकाना पडा ? ' ऐसे हररोज पूछते परंतु प्रत्युतर देने की मेरी हिंमत नही थी । दिंनो के बितने पर में ज्यादा से ज्यादा चिंताग्रस्त होते गया । मेरे प्यारे संतानोको मुख दिखाने में भी मुझे शरम आती थी । उनकी आंखो में जाने कि मैं हररोज उपालभ्भ पढता कि, ''यदि हमें सुखी करने की आपमें ताकात ही नही थी, तो हमें जन्म ही क्यो दिया ? ''

एक दिन में हर थककर घर पहुँचा, तभी मेरी पत्नी ने आनंद में आकर कहा कि,

''क्या आज आपने घोषणा सुनी ? क्षत्रियकुंड के राजकुमार वर्धमान एक साल के बाद संसार को छोडनेवाले है । एक साल तक वह याचको को बहुत दान देने वाले है । आकाश में भी ये घोषणा हुई है । इसलिए इस बातमें कोई शंका नही है । आप जल्दी वहाँ पहुँच जाओ । हालाकि , क्षत्रियकुंड दूर है, परंतु आपको जाना ही होगा । हमारी सारी चिंताएँ दूर हो जाएगी । ''

मुझे इस बात पर जल्दी विश्वास तो न बैठा, परंतु बहार खोजते हुए सब जगहो से इसी बात का नाद सुनके मेरा उत्साह बढ गया । दूसरे दिन मुसाफरी के लिए खाने कि सामग्री लेकर मैं चल पडा ।

अविरत प्रयान करते हुए मैं एक दिन क्षत्रियकुंड पहुँचा । सुबह का दूसरा प्रहर चालु हो गया था । पूछते पूछते मैं वर्धमान के राजमहल के पास पहुँचा । परंतु दूर से ही वहाँ का दृश्य देखकर मैं द्विधा में गिरा ।

सात मंजीलका बडा राजमहल परिसर के बीचोबीच था । महल के चारो ओर बहुत बडा मैदान–खुल्ली जगह ! सेंकडो–हजारो लोगो का आगमन चालु! परिसरमें सेंकडो रथ–घोडे–हाथी–पघडीधारी शेठ मुगटधारी राजाओ–अस्त्रसज्ज सैनिक सेंकडो की संख्या में यहाँ–वहाँ आगमन कर रहे थे । ये भीड और ठाठ–माठ को देखकर मैं द्विधा में गिरा । मेरे कपडे मेले, थोडे फटे–कटे हुए थे । मेरा देदार भिखारी के जैसा था । मेरा स्वभाव संकोचशील था । मुख्य दरवाजे से लगभग पचास कदम दूर खडा मैं यह सब देख रहा था, सोच रहा था । 'अंदर जाना चाहिए के नही ? किसको मेरी बात करुं ? कोण मेरी बात सुनेगा ? मुझे तरछोड देंगे तो? राजकुमार तक मुझे पहुँचने मिलेगा या नही ? कौन जाने वह भी कैसा होगा ? मेरी मजाक उडाएगा तो ?' एक के बाद एक विचार मुझे गभरा रहे थे । मेरा मन निराश हो गया । मैं वापस जाने का विचार ही कर रहा था, परंतु वहाँ ही

''भूदेव! नमस्कार ! कहाँ से पधार रहे हो आप?'' एक सैनिक ने बहुत ही विनयपूर्वक स्नेहसभर भाषा में मुझे प्रश्न किया । उसके शब्दोंमें गजबका वात्सल्य नीतर रहा था । मुझे आश्चर्य हुआ । एक सैनिक ऐसी भाषा बोल सकता है ?

''आ तो रहा हूँ चंपानगरी से ....'' मैंने संक्षेप में उत्तर दिया ।

''तो भूदेव ! अंदर पधारो ना ! हमें आपके आतिथ्य का लाभ दीजिए। मैं राजकुमार का सेवक हूँ । मेरे जैसे सेकडों सेवक यहाँ चारो ओर विद्यमान है। राजकुमारका हमको आदेश है कि यहाँ आनेवाले हरेक का उत्तम कोटिका आतिथ्य करना । इसलिए आप थोडा भी संकोच मत रखना । यह सब आपका ही समझना''... सैनिक ने कहा ।

उसकी वाक्छटाने–नम्रताने–मधुरताने मेरी द्विधा दूर कर दी ।

''चलो ...'' कहके मैं सैनिक के साथ चलने लगा । आवागमन बहुत ही होने से हम धीरे धीरे आगे बढ रहे थे । मैंने उस सैनिक को ही मेरे मनकी बात कर दी ''चंपा से यहाँ आया हूँ, मदद के लिए । परंतु माँगने के लिए जीभ चलती नही है । तुम यदि दो पल देरी से आते तो शायद मैं वापस मुड गया होता । पंरतु मेरी जरुरत बहुत बडी है । क्या राजकुमार मेरी इच्छा को संतोषेगा ? वे इतने उदार है?''

मेरी बात सुनकर सैनिक एक पल के लिए थंभ गया । मेरे सामने देखकर वह हस पडा । ''भूदेव ! हमारे राजकुमार भगवान है, इससे ज्यादा मैं आपको क्या कहूँ ? आपको उनका परिचय देने की शक्ति मेरे पास नही है, तो भी सुनो । उनकी दीर्घदृष्टि, उदारताकी तो कोई बात ही नही हो सकती । मेरे जैसे सेंकडों सैनिकों को ऐसे ही मुक्त विचरण के लिए रखा है । उसका कारण आप क्या जानते हो? राजकुमारने ही हमें कहाँ था कि, ''आर्यदेशकी प्रजा सामान्य तौर पर एकदम सुसंस्कारी है । इसलिए आवश्यकता होने के बावजूद भी हाथ को पसारना उनके लिए बहुत कठिन है । याचक आएँगे सही परंतु यहाँ आकर मुँझाएगे । उस द्विधा–संकोच को दूर करने की जिम्मेदारी अपनी है । हरेक को एसा लगना चाहिए कि यह सब कुछ मेरा ही है । हमें किसीको को भी दीन बनने देना नही है । इसलिए आप सभी को राजमहल के बाहर चारो ओर फिरना होगा । कोई भी याचक–मुसाफिर दिखे, तो उन सभी के साथ सामने से बातचीत करके विनय सत्कार के साथ अंदर लाना चाहिए । उनके मनमें कहाँ भी थोडा सा भी शरम–संकोच–भय रहना नही चाहिए। ''

भूदेव ! यह है हमारे राजकुमार के शब्द ! हम तो है सैनिक ! हमारी भाषा तो कर्कश–बरछट ही होगी, परंतु राजकुमार ने हमें विनय सिखाया ! यह सत्कार, यह औंचित्य सिखाया ! भूदेव ! वे खुद महापराक्रमी है, क्षत्रिय है, तो भी खुद भी हमारे साथ इतना मधुरता से भरा हुआ व्यवहार करते है कि वह देख–देखकर हमारे जीवनमें भी मधुरता का प्रवेश हो गया ।

रही बात उनकी उदारता की ! वह तो आप प्रत्यक्ष ही देखोंगे !''

सैनिक के अमृत शब्दों का पान मैं करता ही रहा । हम आगे बढे । मुख्य

द्वार के पास पहुँचे । वहाँ ''पधारो ! पधारो ! '' कहके मेरा स्वागत किया गया। सैनिक मुझे डाए ओर रहे हुए मकान के समीप ले गया । राजमहल तो अभी दूर था। बडे मैदान को पसार करना बाकी था ।

''आप यहाँ स्नान कर लो, विप्रवर ! यात्रा से थक गए होंगे , तो स्नान से प्रसन्नता रहेगी ।'' सैनिक ने मुझे कहाँ । मैंने स्नानगृह में प्रवेश किया । कुछ गरम, स्वच्छ, सुगंधी जल और शरीर को स्वच्छ करने के लिए अन्य भी द्रव्य... मैंने स्नान कर ली, मेंरी बहुत सी थकान उतर गई । सैनिक ने मुझे नए सुंदर वस्त्र पहनने के लिए दिए । मेरा देदार बदल गया । एक सुखी वणिक के जैसा मेरा देखाव देखकर मुझे भी आनंद हुआ । उसके बाद सैनिक भोजन की थाली लेकर आया । ''आप भूखें तो हुए ही होंगे । पहले आरोग लीजिए ।'' कहके थाली रखकर चला गया । पक्वानों से भरी हुई थाली! केसर-इलायची वाला कढाया गरमागरम दुध, सुगंधीदार द्रव्यो ! मैं खुश हो गया । पेट भरकर मैंने खाया । मेरी प्रसन्नता आसमान की तह को छु रही थी । संपूर्ण जिंदगी मैंने एसा स्नान, एसे वस्त्र, एसा भोजन पहलीबार और शायद आखरी बार ही पाया था ।

सैनिक हाजर हो गया था । ''कोई भी मुश्केली हो तो अवश्य फरमाईए। यहाँ बहार से आनेवाले हरेक यात्रिक के लिए व्यवस्था इसी अनुसार स्थापित की गई है ।''

मैंने देखा की मेरे जैसे दूसरे भी यात्रिकों को दूसरे सैनिक ऐसी ही सभी प्रकार की सुविधाएँ दे रहे थे ।

कैसे होंगे वे राजकुमार ! जिनकी ऐसी दीर्घदृष्टि ! ऐसी उदारता ! मुझे उन्हे देखने की तडप बढ गई । ''मुझे जल्दी राजकुमार को मिलना है ।'' मैंने कहा ।

सैनिक के मुख पर मुस्कान छाई रही ।

''चलो अभी आपको वर्धमानकुमार के पास ले चलता हूँ ।'' कहके उसने मुझे संपूर्णतः नए जुते पहनने के लिए दिए । हम दोनों राजमहल की ओर आगे बढने लगे । हजारों लोगों का आगमन चल ही रहा था । दूर से सात मंजली का प्रासाद देवविमान के जैसा ही लग रहा था । रस्ते में कोई भी सामने मिलते तो वे सभी को नम्रतापूर्वक 'नमस्कार' करते । राजकुमार से संबंधित हरेक व्यक्ति का व्यवहार, औचित्य, हमारी आंखो को अंज दे वैसा था । कही पर भी

अहंकार-तिरस्कार-तुच्छता की छाँट भी नही । मुझे तो धरती पर स्वर्ग का अनुभव होने लगा ।

राजमहल के द्वार में हमने प्रवेश किया। मैंने अंदर का दृश्य देखा और मेरी आँखे अंज गई । राजमहल के बीचोबीच, उपर से खुला हुआ एक बडा चौगान था । वहाँ मध्यस्थान पर उंचे सिंहासन के उपर राजकुमार वर्धमान बिराजित थे । आनेवाले याचको को हथेलीया भरभरकर दान दे रहे थे । उनके ललाट पर राजवंशी तेज चमक रहा था । अद्‌भुत वेश उनके सौंदर्य में बढोतरी कर रहा था। उनकी दान देने की ढब में नम्रता और उदारताका आश्चर्यजनक मिश्रण था। 'देनेवाला इतना नम्र हो सकता है' इस बात को मैने पहलीबार नजरोनजर निरखा था । मैं उन्हें देखते ही रहा । 'मैं किस वजह से यहां आया हूँ?' इस बात को मैं दो पल के लिए भूल गया। धीरे धीरे मैं आगे बढता गया। और अंतमे मैं राजकुमार के पास जा पहुंचा।

''पधारो !!! पधारो ....!!!' रोम रोम में जिन शब्दोको सुनकर आनंद प्रगट आए ऐसे वे शब्द राजकुमार के मुख में से निकल आए । बहुत ही स्नेह से उन्होंने मेरे दो हाथो को खुदके हाथो में पकडकर उचित आसन पर बिठाया। ''बिलकुल संकोच मत रखना । यह सब आपका ही है...'' राजकुमारने मेरी द्विधा दूर की ।

''लडकी की शादी के लिए और अपंग लडके के दवा के लिए अंदाजित १.५ लाख मुद्रा की जरूरत है। मेरी आवश्यकता बडी लगेगी परंतु...'' मैं अभी आगे बोलु उसके पहले राजकुमारने मेरे मुख पर हाथ रख दिया।

''इतनी मुद्राएँ उठाकर तो आप ले नहीं जा पाओगे । इसलिए उन मुद्राओं को रथमें जमाकर आपके घर पर ये सैनिक रखकर आएंगे । आप भी साथ में ही रथ में बैठ जाना । अभी चलकर जाने की आवश्यकता नही है । दूसरा भी कोई भी कार्य हो तो थोडा भी संकोच मत रखना और उपरांत में शायद खर्च ज्यादा भी हो जाए उस दृष्टि से देढ़ की जगह दो लाख मुद्राए ले जाना। उसमें बिलकुल ना मत बोलना...''

मेरे तन-मन को बरसो से त्रस्त कर देती इस चिंता को मैंने पलभर में लुप्त होती हुई देखकर मैं खुद के हर्षको रोक नही पाया। मैं राजकुमार के चरणों मे ढल

गया। जोर-जोर से रोने लगा।

''राजकुमार ! आप सचमुच भगवान हो, तारणहार हो, शतायुर्भवेत्...''

राजकुमारने खुदके कोमल हाथों से मेरे हाथो को पकडकर मुझे खडा किया, उनकी दृष्टिमें बेहद वात्सल्य नीतर रहा था।

तब ही एक दूसरा याचक वहाँ आ पहुँचा। वह दो साल के लडके को उठाया हुआ था। राजकुमार उनकी ओर मुडे । मैं एक ओर सरक गया।

उस याचकने कहा ''कुमार ! जिंदगीमें कभी भी किसी के पास भी मैंने हाथ प्रसारा नहीं है। कितनी ही बार तो भूखा भी रहना पडा है, परंतु उसे मंजुर रखकर भी मैं याचक बना नही हूँ । आज तो मेरी उम्र बाईस वर्ष की हो गई । मेरी टेक पर मै अडग रहा हूँ। परंतु... परंतु... इस लडके की माँ अंतिम दो साल से बीमारी से ग्रस्त हुई, थोडे दिन पहले ही सिधा गई। कितने ही दिनो से मैं कुछ भी कमा नही सका हूँ। मेरे भूख का दुःख तो मैं मौत आने पर भी सह लूँगा, परंतु इस लडके ने गए दो दिनों से कुछ भी खाया नहीं है। पाणी पी-पी कर पेट भरा है, परंतु वो कितना चले। उसका दुःख मैं देख नहीं सकता। बिचारे उसका क्या कसुर? क्या गुन्हा? मेरी जीद के लिए उसे क्यों दुःखी होना पडे?

राजकुमार! इसलिए ही आज जिंदगी में पहलीबार भीख माँग रहा हूँ। वह भी मेरे लिए नही। मैं तो मर जाउंगा, परंतु माँगकर जीउँगा नही। परंतु मेरे लडके के लिए भीख माँग रहा हूँ। कुमार! उसे खाना मिल जाए उतनी कृपा करो। बस, दूसरा कुछ भी मैं मांगता नही।'' (बहार सेवकोने बहुत आग्रह किया था, तो भी उसने खाया नही था। राजकुमार को ही मिलने की जीद पकडी थी।)

बोलते बोलते वह जमीन पर बैठ गया। चौंधार आँसु उसकी आंखोमें से बह रहे थे। रोते हुए बालक को शांत करने के लिए उसको माथे पर हाथ प्रसार रहा था।

मेरी नजर राजकुमार के ओर गई, अहो! वे भी रो रहे थे। एक क्षत्रिय पुरूष जोर-जोर से रो रहा था। तुरंत ही मीठाई का थाल वहाँ आ गया। राजकुमार ने खुद के हाथो से बालकके मुह में मीठाई रखी। प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फिराया। यह अद्‌भुत दृश्य को देखकर आजुबाजु खडे हुए सभी रो पडे। राजकुमारने उस पिताको भी भोजन करने के लिए कहा। परंतु उसने एक भी कवल मुह में नही

डाला। अंततः कुमारने उसे खुदके वहाँ नौकर के तौर पर रख लिया।

''भगवान मैं भिखारी नही हूँ, मेहनत करके खानेवाला हूँ। परंतु भाग्य रूठ गया है। पेट को भर सकु उतनी ही आय हो रही है। उसमें आज ही मेरी माँ ८० वर्षकी उम्रमें स्वर्गस्थ हुई। कुमार! उसे दाह देने के लिए लकडीयाँ और ओढाडने के लिए सफेद चद्दर तो चाहिए ना ? कुमार ! वह मेरे पास कहाँ से होगी?

कुमार ! बस इतना ही मुझे दे दो। नही तो मेरी माँ का अग्निदाह मैं कैसे कर पाउँगा ?''

मैं तो यह सब सुनकर जड सा रह गया। **क्या ये आर्यदेशकी प्रजाके संस्कार** ! मांगके सब कुछ हासिल होने के संजोग होने के बावजूद भी कोई माँगने के लिए तैयार नही! धखधखती खुमारी उन सभी के रोम-रोम में प्रसरी हुई है। कहाँ भी लोभ नहीं, लालच नहीं।

कुमार की करूणा को मैं देख रहा था। उसकी आंखो में आंसु का प्रवाह सतत चालु ही था। उन्हें लगता था कि ''मैं ऐसे लाखो लोगो के दुःखो को तो दूर कर ही नही सकता....''

मन भरके मैंने कुमार को निहारा, राजमहल के बाहर निकला, रथ और दो लाख मुद्राए सुसज्ज थी। मैं बैठ गया और सैनिक मुझे चंपानगरी तक, मेरे घर पर छोड गया।

उसके बाद तो मेरी लडकी की शादी हो गई, आज वह बहुत सुखी है। लडका भी औषधो के द्वारा दौडता हो गया। आज कमाकर हमें सहाय भी कर रहा है।

यह सब प्रताप इस वर्धमानकुमार का.... !'' उसका गला भर आया।

राजा हरिदत्त और प्रजाजन एकतान बनकर ब्राह्मण की अस्खलित धारा को सुन रहे थे। राजकुमार वर्धमान की सच्ची पहचान सब को हो चुकी थी।

हरेक व्यक्ति के मनमें एक बीज सा प्रगट रहा था कि ''हम ऐसे उदार, ऐसे करूणाशील, ऐसे दीर्घदृष्टा, ऐसे औचित्यसभर कब बनेंगे?''

ब्राह्मणने खुदके लडके को आगे बुलाया। ''बेटा ! आज तू जो कुछ है, यह सब प्रताप इस महामानव का है। उनके चरणोकी धूल को माथे पर चढाकर पवित्र बन। जा बेटा! उनके आशीर्वाद ले।''

और लडके ने पिताकी बात का अनुकरण किया।

परंतु महामानव तो जैसे थे वैसे ही ध्यान में खडे थे। उनके मुखकी एक भी रेखा भी बदलती नहीं थी। कैसी गजबकी समता! हजारो लोग उनको भगवान मानकर उनकी स्तुति कर रहे थे, परंतु उनके मन पर उसकी कोई भी छाप गिर नही रही थी।

शेठ सोभागचंद, पत्नी शोभना, विधवा पुत्रवधु सुलक्षणा, राजवी हरिदत्त, कालसिंह और हजारो मानव इस महामानवकी प्रशंसा-स्तवना करते करते खुद-खुद के घर पें वापस फिरे।

***

शास्त्रकार भगवंत कहते है कि **सिद्धिः परार्थता** । आत्मामें वे-वे गुण सिद्ध होने पर, उसके समीपमें आनेवाले में मात्र उसके सान्निध्य मात्र से वे गुण प्रगट जाते है।

''प्रायो भावाद् भावप्रसूतेः'' यह वचन भी यही ध्वनित करते है कि एक आत्मा में जो शुभभाव प्रगटते है, उसके संपर्क से, वचन से दूसरे में वह शुभभाव प्रगटते है।

''विण विनियोग न संभवे रे, परने धर्मनो योग रे'' यह ३५० गाथा के स्तवन का वचन है।

→ प्रभु **निर्विकारी** थे, इसलिए कालसिंह के विकार नष्ट हुए।

→ प्रभु **दयालु** थे, इसलिए लुँटेरे जीवदया करने में तत्पर बने।

→ प्रभु **अपरिग्रही** थे, इसलिए लुटेरे लुंटे हुए धन को वापस करने के लिए तैयार हुए।

→ प्रभु **सहनशील** थे, इसलिए बैलने भी सहनशीलता अपना ली।

→ प्रभु **क्षमाशील** थे, इसलिए सौभाग्यचंद शेठ लुँटेरों को क्षमा देने के लिए उल्लासित बने।

भले ही क्यों न यह कथा काल्पनिक हो, परंतु योगमार्गके दृष्टिकोण से ऐसे प्रसंग शक्य तो है ही। फिर वे प्रभुवीर के जीवनमें घटे हो या दूसरे महात्माके जीवन में।

हम संयमी बने है। जगत के जीवो पर उपकार करने की सबसे ज्यादा फरज तो हमारी ही है। परंतु उसका सच्चा मार्ग ही यह है कि हम स्वयं गुणवान बने।

→ **शक्कर** बिना की मीठाई फिक्की!

→ **गोली** बिना की बंदूक फालतु!

→ **परिवार** बिना का महल भूतबंगला!

→ **जीव** बिना का देह मृतक!

→ **गुणवत्ता** बिना की परोपकारवृत्ति आत्मघाती!

न हो विषयसुखो के प्रति वैराग्य!

न हो जीवमात्र के प्रति निर्मल वात्सल्य!

न हो देवगुरू के प्रति निर्विकल्पनीय समर्पणभाव!

न हो स्वार्थ अंधता की तिलांजलि!

न हो जिनागमो के रहस्यो का बोध !

न हो अंतमुर्खता ! आत्मार्थिता ! गुणलालसा ! दोषगर्हा !

तो,

परोपकार की प्रवृत्ति नुकसानकारी नही बनेगी क्या?

यह हम सभी को विमर्शनीय है।

***

३. सिद्धि : परार्थता

''आचार्यदेव ! एक गुप्त बात करनी है, हम थोड़े एकांतमें बैठे तो कैसा रहेगा ?''

श्रावस्ती नगरी के पीढ श्रावक **हंसराज** एकदम धीमे स्वर से, थोड़े चिंतित होकर आचार्यदेव को विनंती कर रहे थे ।

वे थे आचार्य **भद्रसेन !**

संविग्न और गीतार्थ !

भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा में जन्मे शासनप्रभावक आत्मा !

४० साधुओं के परिवार के साथ श्रावस्तीनगरी में विराजित थे ।

हंसराज के साथ आचार्यदेव एकांत स्थल में गए और हंसराजने हृदय को कंपा दे वैसी बात सुनाई ।

''साहेबजी ! बुरा मत लगाना, परंतु आपके प्रति के तथा शासन प्रति के अहोभाव से ही यह बात मैं कर रहा हूँ । मुझे किसी के दोष देखने नही है, परंतु यदि यह बात आपको न कहु तो संघ–शासन को नुकसान होगा... ऐसा मुझे लग रहा है ।

बनाव ऐसा बना कि आपके मुख्य शिष्य **हरिषेणविजयजी** आज मेरे वहाँ अकेले ही गोचरी वहोरने के लिए आ पहुँचे । मैं तो हाजर नहीं था, परंतु मेरे श्राविका घर पे ही थे । आपके साधुने आकर माँग की, ''आज मेरी तबीयत अच्छी नही है, अशक्ति लग रही है । तो आप मुझे शीरा बनाकर दोगे ?''

मेरी श्राविका तो जिनवचन के मर्म को जानती है । आधाकर्मी दोष साधु के लिए तो महापाप है, यह बात वह अच्छी तरह से जानती है । हा ! वैसा गाढ कारण होता, तो तो कोई प्रश्न ही नहीं था, परंतु उस साधुकी चेष्टाओ में श्राविका को शंका हुई ।

उन्होंने बुद्धिमत्ता वापरकर कहा, ''आपकी तबियत अच्छी नही है, तो आचार्यदेव को हम बात करते है, जिससे वैद्यादि के द्वारा उचित उपचार हो सके...''

श्राविका को शंका थी ही कि 'यह बात आचार्यदेव को मालूम नहीं होगी।

इसलिए ही यह बात आचार्यदेव को करने की बात मैं करूँ । उससे जो सच्ची हकीकत होगी... वो मालूम हो जाएगी...''

परंतु पूज्यवर ! मैं आपको क्या कहूँ ? श्राविका की बात को सुनकर साधुने क्या प्रत्युत्तर दिया यह आप जानते हो ?

उसने कहा कि, ''हमारे गुरुदेव बहुत ही जीद्दी है । कोई साधु बिमार हो जाता है तो भी वे अपनी संयमचुस्तता की जीद छोडते नही है । उपवास कराते है, परंतु दवा देते नहीं । आधाकर्म विगेरे दोषो का सेवन करने नहीं देते । शिष्य हेरान-परेशान हो जाए तो भी वे अपना कदाग्रह नहीं छोडते । इसलिए ही आप आचार्यदेव को बात करने का विचार मूलतवी रखिए । आपकी भावना हो तो बनाकर दो शीरा! नहीं तो कुछ नहीं । मैं सहन करूँगा...''

श्राविकाने तभी तो शीरा बनाकर वहोरा दिया, परंतु उसके बाद यह सब बात उसने मुझसे की ।

हमे साधु के प्रति लेश भी असद्भाव नही है, परंतु वह संयमजीवन हार न जाए, भगवान की आज्ञाओ को तोड़-फोड़कर दुर्गतिगामी न बने... इसलिए हमारे हृदयमें करूणा ही बह रही है । आचार्यदेव ! आप हमारे लिए दूसरा विचार मत करना । हमें आप पे संपूर्ण श्रद्धा है । अब आपको जो योग्य लगे, वैसा करना...''

आर्द्र स्वर से, आर्द्र आँखों से हंसराज श्रावकने बात पूर्ण की ।

आचार्यदेव गहरे विचार में आरूढ हो गए । मुख पर भारी उदासीनता छा गई। योग्य कारवाई करने की बात कर आचार्यदेव ने हंसराज श्रावक को विदा किया ।

पीछले थोड़े समय से आचार्यदेव भी गच्छ के बदलते वातावरण को देख रहे थे । शुरुआत में तो ४० साधुओ का वृंद बहुत ही अच्छी आराधना करते थे। परंतु धीरे धीरे एक-दो साधुओं में छुटछाट घूसी, सुखशीलताने प्रवेश किया... और उसका चेप दूसरे साधुओमें भी फैलने लगा । आचार्यदेव का पुण्य प्रकोप कम होने लगा, उनकी आदेयता और पराघातता कमजोर होने लगी ।

आचार्यदेव हररोज वाचना तो देते ही थे... परंतु उन्होंने देखा कि साधुभगवंत अभी उल्लासपूर्वक वाचना सुनते नहीं थे । आगमों के अद्भुत पदार्थो

में भी साधुओं की रुचि घटने लगी थी ।

एक दि'

चालु वाचना में आचार्यदेव को ख्याल आया कि, 'एक साधु हाजर नहीं था ।' उन्होंने आजुबाजु नज़र फेंकी, तो दूर वह एक साधु संथारे को प्रसारकर सोया हुआ था ।

''अरे ! वह सो क्युं गया ? तबियत तो अच्छी है ना ?''

''हा ! परंतु वह थक गया है, निंद आ रही है, इसलिए सो गया...''

''परंतु ऐसे दिन में सो नहीं सकते, प्रायश्चित आता है । उपरांतत: उसे जोग चल रहे है, जोग में तो दिन में बिल्कुल सो नहीं सकते । जाओ, उठाओ उसे...'' आचार्यदेवने कहा ।

और...

देवसेनविजय नाम के एक साधुने जाहेर में ही आचार्यदेव के वचनों को तोड़ दिया । ''गुरुदेव ! क्षमा करना, परंतु ऐसी सख्तता रखोगे, तो एक भी साधुको अच्छा नहीं लगेगा । बलात्कार से धर्म कराने का कोई अर्थ नही है । आप उपदेश दीजिए । जिसको जितना अच्छा लगेगा, उतना वह करेगा... बाकी यह सब हमको उचित नहीं लगता ।

वह साधु तो सिर्फ सो ही रहा है ना ? कुछ पाप तो नहीं कर रहा है ना?''

आचार्यदेव तो सुनते ही रहे ।

उनको सबसे ज्यादा आश्चर्य इस बात का हुआ कि ४० में से कोई भी साधुने देवसेनविजयको उपालंभ भी नहीं दिया, सभीने जाने कि मौन रखकर उसकी बात में संमति दे दी ।

आचार्यदेव को असह्य झटका लगा । संपूर्ण गच्छ जभी विरोध में आ जाए, तभी वे क्या करे ?

उपरांत में दो-तीन दिनों के बाद वाचना में ही एक साधु भगवंत को टेका लेकर मस्ती से बैठे बैठे वाचना सुनते हुए आचार्यदेव ने देखा ।

''तुझे थोड़ी भी शरम आती है ? मैं खुद भी टेका लेता नहीं हूँ, और तू वाचना सुनते-सुनते भी इस तरह से बैठता है ? हाथ जोड़ना नहीं, कुछ भी उल्लास नहीं... यह कौन-सी रीत है?...''

वहाँ तो **सिद्धसेन विजय** नाम के साधुने बीच में ही प्रत्युत्तर सुना दिया कि, ''साहेब ! ऐसी छोटी-छोटी बातों की कचकच करने की क्या जरुरत है ? उसकी पीठ दुखती होगी, तो भले न वह टेका ले । वह वाचना तो सुन ही रहा है ना ? शरीर शरीर का धर्म निभाएगा... तो उसमें वह क्या करे ?...''

आचार्यदेव की आमन्या गच्छ में तूट रही थी । धीरे-धीरे सभी को स्वच्छंद बनने का - सामने जवाब देने का घाती चेप लगने लगा था । ऐसा एक भी साधु नहीं था कि जो आचार्यदेव के साथ खड़ा रहे । इसलिए सभी आचार्यदेव के साथ होने के बावजूद भी अलग जैसे होने लगे थे ।

आचार्यदेव का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था वाचनादान ! परंतु अभी उसमें ही बड़े विघ्न खड़े होने लग गए । साधु भगवंत समयानुसार नहीं आते, मुख पें उल्लास दिखाई नहीं देता, कोई सो जाता, कोई टेका लेकर बैठता, कोई तो आपस में अंदर-अंदर बाते करते । आचार्य यदि बातें करने का निषेध करे तो, ''महत्त्व की बात है, आप वाचना चालु रखिए ना ? किसी को विक्षेप नहीं हो रहा...'' कहकर आचार्य की सुचनाको वे उड़ा देते...

अंततः थककर, कंटालकर, हताश होकर आचार्यदेवने शारीरिक प्रतिकुलता के बहाने को पुरस्कृत कर वाचना बंध कर दी । साधुओ को तो भीतर में आनंद ही हुआ ।

आचार्यदेव खुद की पुण्यहीनताका साक्षात् अनुभव कर रहे थे ।

वास्तविकता यह थी कि,

आचार्यदेव के पुण्य में खामी से ज़्यादा भी इस कुकालकी ही खामी थी। हुंडा अवसर्पिणीका भीषण काल अच्छे-अच्छों के हृदय में काजल-सी मलिनता उत्पन्न करवा रहा था । सभी आदर्शो का क्षण में विलय हो रहा था । जीव तो खानदान थे, परंतु कुकाल और कुनिमित्तोने उनके मानसतंत्र पर अड्डा जमा लिया था ।

इसलिए ही,

भगवान के सदृश आचार्यदेव के सामने उद्धताई, अविनय, असद्भाव थोड़े ज़्यादा मात्रा में साधुओं में प्रसर रहे थे ।

अभी तो वह कांजल की मेलाश ज्यादा और ज्यादा गहरी बनती जा रही

थी ।

आचार्यदेव के दो टाईम के प्रतिलेखन में भी उपेक्षा होने लग गई । साधु प्रतिलेखन के लिए आते – नहीं आते, देरी से आते... आचार्यदेव एकांत में श्रावक देख न सके उस तरह प्रतिलेखन करने लग गए थे ।

गोचरी में भी आचार्यदेव के प्रति कोई भी भक्तिभाव दिखाते नहीं थे । गोचरी को भी आधे साधु दिखाते और आधे नहीं भी दिखाते । आचार्यदेव को अनुकूल वस्तुओ से भक्ति करने का भी भक्तिभाव कम होने लग गया था ।

प्रतिक्रमण मांडली में भी साधु कम होने लग गए थे । सभी स्वत: स्वत: प्रतिक्रमण करने लग गए थे ।

यह सब कम हो, वैसे अभी साधुओं का श्रावको के साथ का व्यक्तिगत परिचय बढ़ने लगा । सुबह से लेकर उपाश्रय में साधुओं के पास श्रावकों का आवागमन, चर्चा–विचारणा शुरु हो गई ।

आचार्यदेव चुपचाप यह सब कुछ देखा करते । कोई भी साधु श्रावकों को आचार्यदेव के पास वंदन करने के लिए भेजने के विनय की परवा भी नहीं करता। स्वाध्याय तो माले पें चड़ गया, धर्मोपदेश के बहाने से गृहस्थ परिचय ने अपना रंग बताया ।

एक संविग्न–गीतार्थ–भवभीरू–महान आचार्यदेव खुदके नज़र के समक्ष खुदके आश्रितों का यह अध:पतन कैसे देख पाएगे ? उनके रोम–रोम में अपार वेदना प्रसर उठी । आश्रितो के यह सभी विचारों से करूणा से उनकी आँखें भीग जाती।

''ओ ! भगवान पार्श्वनाथ ! क्षमा करना । गच्छ को सँभालने की, मोक्ष के मार्ग पर आगे बढाने की मेरी जिम्मेदारी मैं निभा नहीं सका । मेरा क्या होगा? अनंत संसार ? इस शासन की क्या दशा होगी ?'' कभी तो इस विचारों से आचार्यदेव एकांत में साक्रंद रुदन करते ।

परंतु उनकी वेदना को समझनेवाला कौन था ?

उनके आँसुओं को पोछनेवाला कौन था ?

यह सब कुछ चल ही रहा था, उपरांत में हंसराज श्रावकने उपर बताई हुई बातों का प्रक्षेप हुआ ।

यद्यपि आचार्यदेव को ऐसा ही लगा कि, ''ये शिष्य अभी ऐसा कुछ करे तो उसमें अभी आश्चर्यचकित होने जैसा कुछ नहीं था ।''

तो भी षटकाय की हिंसा में उत्पन्न होते आधाकर्मी पदार्थ के प्रति शिष्य की ये निष्ठुरता उन्हें भारी चोट लगा गई ।

परंतु करे क्या ? कहे क्या ?

उस ही रात को बारह बजे के आसपास आचार्यदेव मात्रु करने के लिए खड़े हुए । उपाश्रय के पीछले भाग में मात्रु करने की जगह थी ।

मात्रु करने के लिए खड़े हुए आचार्यदेव ने गहन अंधेरे में चंद्र के थोड़े-थोड़े प्रकाश में एक कोने में किसी आकृति को देखा, आचार्य ने ध्यान से देखा तो ऐसा लगा कि कोई व्यक्ति वहाँ कुछ खा रहा था ।

इस आधी रात को वहाँ कौन होगा ? गृहस्थ तो नहीं होगे ? क्या कोई साधु होगा ? रात को...

आचार्यदेव ज़्यादा सोच नहीं सके, वहाँ नज़दीक जाकर खोज करने की भी हिंमत नहीं हुई । शांति से मात्रु करके इरियावहि कर संथारे में सो गए । परंतु, चिंता के कारण से लगभग संपूर्ण रात उनकी जाग्रत दशा में पसार हुई ।

सुबह को उजाले में उस कोने के पास जाकर आचार्यदेवने खोज़ की, तो वहाँ काजु-बदाम के छोटे-छोटे थोड़े अंश दिखाई दिए...

हाय ! मेरा साधु रात्रिभोजन करता है...?

तो भी मन को उन्होंने अत्यंत कठिनता से पकड़ रखा, वे कड़वे घुंट गल गए ।

और

दो-चार दिनों के बाद उन्हें नई तरह का सिलसिला देखने मिला ।

उपाश्रय में अब तक गृहस्थ ही आते थे, बहने नहीं । परंतु आचार्यश्रीने देखा कि आज तो भाईयों के साथ बहने भी आई है और साधु उनके साथ बैठकर उन्हें उपदेश दे रहे है ।

शास्त्रकार महर्षिओंने जिस व्रत में अपवाद दर्शाया नहीं है, उस व्रत की वाडो का उल्लंघन शुरु होते देखकर आचार्यदेव से रहा नहीं गया ।

''साधुभगवंतो ! कितने ही दिनों से मेरा हृदय भर चुका है । जिनेश्वर देव

की संसारतारक आज्ञाओं का खुल्लेआम भंग होते हुए मैं देख रहा हूँ । कोई भी मेरी बात मानने को ही तैयार नहीं है । तुम्हारी उद्धताई से त्रस्त होकर अंतत: तबियत के बहाने को पुरस्कृत कर मैंने वाचना बंध की...

तुमने स्वाध्याय को छोडकर गृहस्थो के साथ परिचय बढाया ..... मैने कुछ नही कहा ।

तुमने प्रतिलेखनादि क्रियाओमें गोटाले शुरु कर दिए ..... मैने कुछ नहि कहा ।

तुमने गोचरीमें भी आधाकर्मादिकी छुटछाट कर दी ..... मैने कुछ नही कहा ।

रे ! किसीने तो रातको खानेका ..... तो भी मैं चुप रहा । परंतु अभी तो हद हो रही है ।

आज उपाश्रय में बहने आई, साधुओने मेरी छुट के बिना भाईयो-बहनो के साथ लंबे समय तक बाते की .... तुम सब नक्की मानना कि यह गुरुके छुट के बिनाका स्त्रीपरिचय घातक फलदायी है । पतनका यह पहला कदम बनेगा ।

भले, तुमने धर्मकी बाते की हो, भले आज तुम शायद निर्विकार हो ... परंतु यह भूल अंतमें तुमारे सर्वनाश को आहवान करेगी ।

मैं तुमे आदेश कर रहा हूँ कि यह सब बंद कर दो ....''

आचार्य भद्रसेनसूरिश्वरजी ने साधुओ को इकट्ठा कर अंतरकी वेदना वाणी के रूप में प्रगट कर दी ।

परंतु

यह **विषमकाल** !

कमजोर **हृदय** !

इस अमृतवचनोने झेर का काम किया ।

इस पाणीने पेट्रोल का काम किया ।

साधुओने मर्यादा उल्लंघी .....

''क्षमा करना ... गुरुदेव ! परंतु किसी भी तरह की पूछताछ के बिना इस तरीके से मनमें आए वैसे आरोप हमारे पे रखने का आपका कोई भी अधिकार नही है । हमें भी संयम प्यारा है । ब्रह्मचर्य के खपी है हम ! हमारे पर ऐसे आक्षेप

करने में आपको थोडी भी शरम नही आई ?

आपको मालूम है कि वे बहने क्यो आई थी ?

गुरुदेव ! भगवान पार्श्वनाथ का शासन हमारे रोम-रोममें बसा हुआ है । उस शासन के साधु-साध्वीजीओ की तरह श्रावकादि भी उच्च कोटिके तैयार हो, ऐसी हम सभी की अंतरंग भावना है । इसलिए ही हम स्थानिक गृहस्थोको रोज बुलवाते थे, उपदेश देते थे, सच्चे बनने के लिए समझाते थे ।

परंतु उनके साथकी बातचीत के बाद हमें स्पष्ट लगा कि घर की संपूर्ण सत्ता स्त्रीओके हाथमें है । यदि स्त्रीयोका परिवर्तन हो तो घरघरमें धर्मका प्रवेश करवाना एकदम ही सरल हो जाए । परंतु यदि स्त्रीयोका मिजाज बिगडा हुआ हो, तो ये पुरुष कितना भी समझे तो भी सबकुछ फालतु है । ऐसे भी वे धंधा-आजीविकामें बहुत समय मशगुल होते है, जभी स्त्रीयाँ तो घर में ही होती है, इसलिए संतानोको भी संस्कारी बनाने का कार्य स्त्रीयाँ ही कर सकती है ।

इस वास्तविकता का ख्याल आया, इसलिए स्त्रीओको प्रतिबोधित करना आवश्यक लगा । इसलिए हमने श्रावकोके साथ श्राविकाओको भी आने दिया ।

हम श्राविकाओके सामने देखकर बात नही करते, श्रावको के साथ बाते करते है ।

श्राविकाएँ बाजु में बैठकर सुनती है .... यदि हमारे मनमें पाप होता तो हम यह सब कुछ गुप्त जगह पर करते । परंतु हम जाहेरमें ही बैठते है ।

परंतु बुरा मत लगाना, गुरुदेव ! हमें ऐसा लग रहा है कि आपको हमारे प्रति पूर्वग्रह बंध गया है। हमारी शुभभावनाएँ, उत्तमताएँ आपको दिखती नही, सिर्फ हमारे सभी में दोष का ही दर्शन हो रहा है ।

अविनय हुआ हो तो क्षमा करना ... परंतु सत्य हकीकत का बयान यदि न किया जाए तो आपको नुकसान होगा। इसलिए आपके हित के लिए ही यह स्पष्टता की है ।''

४०-४० साधुओ का यह एक ही सुर निकला । बोलने वाला सिर्फ एक, परंतु सम्मति सबकी .....

आचार्यदेव कह सकते थे कि, ' यह सभी जिम्मेदारी गीतार्थ मुनिओ की है । अपरिपक्की तो आज शायद अच्छी भावना हो तो भी उसमें मलिनता का

प्रवेश होते हुए देर नही लगेगी। शास्त्राज्ञाओ का उल्लंघन बडी आपत्तिओ का आह्वान करनेवाला है ...'' इत्यादि ।

परंतु यह रोम-रोम में डाम लगे वैसे शब्दो को सुनने के बाद आचार्यदेव एक भी अक्षर बोलने के लिए थोडे भी हिंमतवान नही हुए ।

परंतु वे मनमें ज्यादा से ज्यादा खिन्न होने लगे । ''यह, सब साधु इस तरह से कही ब्रह्मचर्य के घात को करनेवाले नही बनेगें ना ? हाय ! घोर शासनहीलना! उन साधुओ का दीर्घ संसार ! और उनके गुरु के तौर पर मेरा भी .....

यह पाप मात्र बिंदु है, परंतु शास्त्र कहते है कि यह बिंदु सिधुं बन सकता है, यह चिनगारी ज्वाला बन सकती है । ओ अधिष्ठायक देवो ! तुम तो मुझे मदद करो ! कुछ चमत्कार सर्जो ... ''

उनका मन आहटे भर रहा था ।

परंतु .... वे भी जानते थे कि गिरता काल है, कर्मोके खेल निराले है, भविष्यता के समक्ष सभी ही परिबल अशक्तिमान है .....

मनमें निर्णय किया कि, 'अभी मेरे साधुओको एक भी अक्षर बोलना नहीं। मुझे मेरी आराधना ही करनी । जो होना होगा वो हो जाएगा ..... '

परंतु वह निर्णय ज्यादा नही टिका । शासनदाझ, शिष्यकरुणा ने उन्हे फिर से एकबार शिष्यो के सामने जोर जोर से रोकर आर्त्तनाद करने पर मजबूर कर दिया।

बनाव ऐसा बना कि,

दो-तीन दिनो के बाद .....

आचार्यदेव की आँखे एक दृश्य देखके चौंक उठी ।

थोडे थोडे साधुओके पास अकेली स्त्रीयाँ बैठी थी, कोई भी पुरुष नही । वे साधु उनके साथ, उनके समक्ष देखकर बाते करते थे । आचार्यदेव की उपस्थिति होने के बावजूद भी उन्हे थोडा भी संकोच नही हो रहा था ।

आगम के रहस्यो को पीकर पचानेवाले, महासंविग्न आचार्यदेव के लिए यह दृश्य असह्य , सीमातीत वेदना को उत्पन्न करनेवाला बन गया ।

और ..... ,

दुपहरको आचार्यदेवने सभी साधुओको इकट्ठा किया। साधु अनिच्छासे

भी इकट्ठे हुए । आचार्यदेव की आँखो में से आसुओ की रमझट शुरु हुई । आवाज दब गई । महामेहनत से बोले ....

''तुमने दो-चार दिनो के पहले ही तो मुझे कहा था कि हम पुरुषो के साथ बाते करते है, स्त्रीयो के सामने देखते नही है, ... और आज यह क्या बतंदर चालु किया है ? आज तुम अकेली स्त्रीयो के साथ, उनके सामने देख-देखकर बाते नही कर रहे थे ? दूसरे साधुओने भी इस बात का विरोध नही किया ? कोई भी मुझे शिकायत करने भी नही आया ?

तुम सबने आखिर में क्या धारा है ? तुमे क्या करना है ? संयम किस के लिए लिया है तुमने ? यह सब कुछ भूल गए ?

याद रखना ..... यदि तुम अभी भी नही सुधरोगे, पश्चाताप-प्रायश्चित-अकरणनियम नही लोंगे ..., तो तुमारा पतन स्त्रीयो से ही होगा । यह मेरे वचन श्राप नही है, परंतु शास्त्रवाणी है .... ''

आचार्यदेव को आज लगा कि 'मैंने आँखो के आँसुओ के साथ अपार लगाव के साथ जो बात की है , उसकी असर शिष्यो पे होंगी । आँसु यह ऐसी वस्तु है जो भलभलेको पीगला दे । ऐसे भी सभी शिष्य खानदान कुल के औलाद है ..... ''

परंतु उनकी धारणा झुठी पडी । स्त्रीसे पतन होने का श्राप जैसा आक्रोश शिष्योको ज्यादा द्वेषी बनाने में निमित बना ।

और ऐसे भी जब भवितव्यता प्रतिकूल हो तभी वहाँ शिष्य भी क्या करेंगे? और अमृतवाणी की भी किंमत कितनी ?

मुख्य शिष्य हरिषेण विजयने शांत तो भी स्पष्ट शब्दो में आज अब इस गुरुशिष्य के संबंधको अंतिम स्वरूप देने के खुद के निर्णय का बयान कर दिया।

वह बोला कि, ''गुरुदेव ! मुझे लग रहा है कि अब हम गुरु-शिष्य के तौर पर साथ रह सके यह शक्य नहि है । हमें हमारा रस्ता नक्की कर लेना होगा। आप आपके रस्ते और हम हमारे रास्ते ! जिसको आपके साथ रहना हो, वह भले रहे, मैं किसी को भी अटकानेवाला नही हूँ । परंतु, मैं तो आपके साथ अभी रह नही पाउंगा ।

हा ! मैं और दूसरे भी साधु अकेले बहनो के साथ बातचीत कर रहे थे।

परंतु उसके कारण की जाँच आपने की ? किसीको पूछा ? बस, सीधी ही खराब कल्पना आपने हमारे लिए कर दी ?

वास्तविकता यह हैं कि हमने भाईओके साथ बहनोको भी प्रतिबोध कर श्रावकोके घरोको धर्ममय बनाने का पुरुषार्थ सक्रिय किया। परंतु पीछे से अकेले में स्त्रीयोने ही हमें कहा कि, ''यह हमारे श्रावकोके विषयमें हम अंगत सलाह लेना चाहते है ..... ''

तभी हमें पता चला कि स्त्रीयोको भी श्रावकोकी ओर से बहुत समस्याएँ होती है, उनकी उपस्थिति में स्त्रीयाँ कुछ बोल नही सकती । इसलिए श्रावकोके अभावमें हम उन स्त्रीयोकी समस्याओ को सुन रहे थे । उसका समाधान देकर, मार्गदर्शन का प्रदान कर उन्हें धर्ममार्गमें स्थिर कर रहे थे । बस मात्र इस ही कारण से हम स्त्रीयो के साथ अकेले बैंठे थे ।

उपरांतत: हम जाहेरमें ही बैठे थे .....

तो भी आपने हमें स्त्रीयों से पतन पानेवाले जाहेर कर दिया ।

क्षमा करना ! परंतु हम भी स्वाभिमानी है, ऐसे आक्षेपो को सुनने के बाद अब आपके साथ रहना हमारे लिए अति दुष्कर है ... हम हमारे मार्ग को खोज लेंगे ....''

और हरिषेण विजय खडा हो गया, उसके साथ ही दूसरे साधु भी खडे हो गए । आचार्यदेव के प्रत्युत्तरादि की राह देखे बिगर ही वे खुद-खुद के स्थानो पे जाकर काम पे लग गए ।

आचार्यदेव !

निःसहाय !

निराधार !

परिस्थिति ऐसा मोड लेगी इस बात की तो कल्पना भी उन्हे कहाँ से हो?

शून्यमनस्क आचार्यदेव वहाँ ही आधा-एक घंटा बैठे रहे । अंतमें स्थंडिल की शंका होने पर आचार्यदेव वडीनीति के लिए अकेले गाँव के किनारे जाने के लिए चल पडे ? ऐसे भी पीछले थोडे दिनो से आचार्यदेव के साथ कोई साधु जाता नही था । उपरांत में आज की घटना के पश्चात् तो अभी कोई साथ

में आए ऐसी अपेक्षा रखनी ही वाहियात थी ।

स्थंडिल से वापस आए, स्थान पे बिराजे .... परंतु कहाँ भी मन लग नही रहा था। कोई अकल्प्य भय उन्हे डरा रहा था ।

''हरिषेण ने अलग होने की धमकी उच्चारी है । किसीने भी इसका विरोध किया नही है ? सभी ही उसके पक्षमें है । भले सभी के भाव उतने मलिन न हो, परंतु एक - दूसरे की वजह से सभी उस ओर व्युद्ग्राहित हुए है । .....

यदि वे सभी ही एक बनके मुझे छोड देंगे तो ? मैं अकेला ? मेरी संयमाराधना को मैं कैसे करुँगा ? जिनकल्पका तो मैने कोई अभ्यास किया ही नही है, कि एकाकी विचरने में समर्थ बनुं ?

तथा लोग भी मेरा दोष ही देखेंगे ना ? सभी कहेंगे कि ''एक साधु खराब हो सकता है, सभी क्या खराब नही होते। नक्की आचार्यदेवने ही कोई बडी भूल की होगी जिस वजह से साधुओने उनसे नाता तोड दिया .....''

४० साधु मेरे विरुद्ध कैसी भी बात कर सकते है, और उनके सामने मेरी बात कौन मानेगा ? हाय ! मैं अभी जिंदगी कैसे बिताउंगा ? हे प्रभु ! आपके इस गच्छ को मैं संभाल नही पाया । प्रभो ! मेरा पुण्य कम पडा । बाकी मैने कुछ भी कमी रखी नही है ? साधुओ को संयमी, परिणत बनाने के लिए मैने मेरी ओर से सब प्रकारका भोग-बलिदान दिया है । परंतु वे थोडे शिष्य शिथिल, स्वच्छंदी बने .... धीरे धीरे सभी को वह चेप लग गया .....

खेर ! बिचारे उनका भी क्या गुन्हा ? मेरी ही भूल है कि मैंने उनकी पात्रता की ज्यादा से ज्यादा परीक्षा नही की ? वे जीव तो कर्मवश है ? मुझे उन पर क्रोध नही करना है । उनका कल्याण हो ....

परंतु मेरा क्या होगा ? मैं अकेला पड जाउगा ? .....''

आचार्यदेव को एक के बाद एक विचार बहुत खेद जन्मा रहे थे । भविष्यका विचार उन्हे चिंतासमुद्र में डुबा रहा था ....

प्रतिक्रमण किया, स्वयं स्वाध्याय करने बैठे... परंतु मन स्थिर नही हो रहा था। पहले के विचार ही मनमें दौड आए ..... घंटो तर आचार्यदेव वैसे के वैसे ही बैठे रहे । अंततः स्वतः संथारे को बिछाकर आराम करने का प्रयत्न किया, परंतु निद्रा दुश्मन बनी ।

लगभग एक–देढ बजे तक आचार्यदेव करवते बदलते रहे । ऐसी चिंतामें भी करवते बदलते समय ओघे से पुंजने–प्रमार्जने के उपयोगको बिलकुल खोया नही ।

अंतमे शरीर तो शरीर का कार्य करता ही है ना ?

लगभग दो बजे के आसपास आचार्यदेव निद्रानवश बने । उतने समय तक उनकी सभी चिंताएँ भी निंद्रावश बनी ।

पोष मास की कातिल ठंडी उन दिनोमें चल रही थी । रातको देर से सोने की वजह से सुबह आचार्यदेव की आँखे भी देर से खुली । निंद खुलते ही वे एकाकी के विचार दौड आए । संथारे में सोते सोते ही, पांच मिनिट आचार्यदेव उन ही विचारोमें विचरते रहे । अंतमें 'बहुत समय हो गया है ? ऐसा विचार कर महामेहनत से संथारे में बैठ उठे । उनकी दृष्टि भींत की ओर की खिडकी के बहार थी । पीठ उपाश्रय के होल की ओर थी । एक– दो मिनिट पसार हुई । अंततः प्रतिक्रमण करने के लिए उन्होने पीठ मोडकर उपाश्रय के होल की ओर नजर की .....

और उनके आश्चर्य का पार न रहा ।

पल–दो–पल तो उन्हें उस दृश्य पर यकीन ही नही हुआ ।

उन्होनें आँखो को रगडा ।

'में जाग रहा तो हूँ ना? ' इसका पक्का निर्णय कर लिया, फिर वापस से उस दृश्य को देखा । तो .....

चंद्र के प्रकाश में उन्हें स्पष्ट दिखाई दिया कि ४० साधु गोलाकार मांडलीमें बैठकर स्वाध्याय कर रहे थे ?

यह क्या ?

अंत के कितने ही दिनोसे साधुओने स्वाध्याय छोड दिया था । सभी सुबह को खुद–खुद के स्थाानो पर बैठे होते या आराम करते होते ..... उसके अलावा यह सभी साधु विधिसर स्वाध्याय मांडली के आकार में जमा होकर आराधनामग्न थे ।

थोडा समय हुआ ..... आकाश में उजाला होने लगा कि त्वरीत ही सभी साधुओने प्रतिलेखन चालु कर दिया । सभी साधु आचार्यदेवकी उपधिका प्रतिलेखन

करने के लिए उपस्थित हुए । प्रतिलेखन के लिए जाने की सब तलपापड होने लगे। साधुओका उत्साह समा नही रहा था ऐसा स्पष्ट दिखने लगा ।

यह भी आचार्यदेवके लिए आश्चर्य था । क्योकिं अंतके थोडे समय से आचार्यदेव खुदका सब प्रतिलेखन स्वतः ही करते थे । शिष्योने उस विनय की ओर सरियाम उपेक्षा ही की थी । जभी आज १-२ नही, ४० साधु बडे उत्साह से प्रतिलेखन के लिए आज प्रयत्नशील बने थे ।

प्रतिलेखन के बाद ४० साधु वंदन के लिए आचार्यदेवके पास आए ।

रोज अलग अलग वंदन करनेवाले, अविधिसे वंदन करनेवाले उन ४० साधुओने आज एक साथ वंदन किए और ''इच्छकारी भगवन् ! पसाय करी पच्चक्खाननो आदेश देशो जी,'' यह आदेश मांगा ।

उस समय मुख्य शिष्य हरिषेण विजयने विनंती की । ''गुरुदेव ! आपश्रीकी अनुमति हो, तो मुझे आजसे मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करने की भावना है। यदि आपश्रीको योग्य लगे तो आपके मुखकमलसे मासक्षमणका पच्चक्खान देशोजी .... ''

'आधाकर्मी खानेवाला, उस बात के लिए मुझे जीद्दी कहनेवाला,मेरे विरुद्ध में होनेवाला यह हरिषेण आज अहोभाव के साथ मासक्षमण का पच्चक्खान माँग रहा है । यह परिवर्तन कैसे हुआ ?'

आचार्यदेव विचारमें पडे। अभी तो कल की ही दुपहर को ही हरिषेण विजयके धमकी से भरे हुए शब्द आचार्यदेवके कानमें गुंज रहे थे ।

लगे हुए सदमें के कारण से आचार्यदेवने किसी भी प्रश्न को पूछे बिना मासक्षमणका पच्चक्खान दिया । बाकीके सभी साधुओने अट्ठम, आयंबिल विगेरे के पच्चकखाण लिए । नवकारसी मांडलीका संपूर्णतःविच्छेद हो गया ।

आचार्यदेवकी अनुमति लेकर सभी खुदखुद के स्थान पे पहुँचे, तुरंत ही भींत की ओर दृष्टि कर सूत्रपाठ करने बैठ गए । स्वाध्याय का मधुरतम घोष संपूर्ण उपाश्रयमें गुंजने लगा ।

स्वाध्याय को माले पर चढानेवाले, सुबह से ही गृहस्थो के साथ बातचीतमें पडनेवाले ४० साधु अचानक एक ही रात्री के अंदर में महास्वाध्यायी कैसे बन गए ?

आचार्यदेवको यह प्रश्न उलझाता रहा । अलबत, उन्हे यह सब कुछ देखकर आनंद जरुर हुआ, परंतु लगे हुए भारी सदमें से वे बहार आ नही पाए थे .....

आचार्यदेवने देखा कि बडी उमर का एक साधु उपाश्रयके मुख्य द्वार के पास ही बैठा था । रोज रोज मिलने के लिए आनेवाले श्रावक आज भी आ रहे थे । परंतु वे वृद्ध साधु सभी गृहस्थो को वहाँ ही रोक देता ।

''साधु भगवंत स्वाध्यायमें है, अभी कोई नही मिलेगा ।'' ऐसा उत्तर देकर विनय पूर्वक विदाय दे देता ।

गृहस्थ बोलते कि ''साधुने हमें मिलने आने को कल कहा ही था ..''

तो वृद्ध साधु उतर दे देता कि, ''भले कहा हो, परंतु अभी वे नही मिलेंगे। वे सब साधु स्वाध्याय के दौरान किसीको मिलेंगे नही ...''

और गृहस्थ वहाँ से वापस मुड जाते ।

आचार्यदेवने देखा कि एक भी शिष्य दरवाजे की ओर एक झलक भी डाल नही रहा था । ''कौन आया ? कौन गया ?'' इस बात की लेश भी परवा कर रहे नही थे ।

पहला संपूर्ण प्रहर सुत्रपौरुषीका प्रघोष चला ।

पात्रपौरुषी पूर्ण होने के बाद सभी साधु आचार्यदेव के पास इकट्ठे हुए ।

''गुरुदेव ! आप कृपालु की प्रसन्नता, अनुकुलता हो तो आपश्री वाचना देकर हम पर उपकार कीजिए .... ''

उस विनंती में घी से लथपथ अहोभाव नितरता हुआ आचार्यदेव को दिखा। आचार्यदेव ने इजाजत दी । वाचना शुरु हुई ।

''दुध से जला हुआ छाश भी फुंककर पीता है ... '' उस नीति से आचार्यदेव बहुत ही सावचेती से बोल रहे थे । शिष्यो को कडवे लगे वैसे एक भी वचन का उच्चार न हो जाए, इस बात की वे शक्यतः सावधानी रख रहे थे ।

परंतु आचार्यदेवने स्पष्ट देखा कि ४० साधु उत्कटुक आसनमें (उभडक पैर से) वाचना सुन रहे थे ।

न तो दिवाल को टेका, न तो पलाठी, न तो निंद, न तो परस्पर बातचीत !

मुख के उपर के भाव वाचना के प्रति के अत्यंत उत्कंठा का निर्देश कर रहे थे । थोडे साधुओकी आँखो में तो हर्षाश्रु भी छलकते हुए दिखाई दिए । बोलनेवाले को चतुर्गुण बोलने की इच्छा हो, वैसा अद्‌भुत उन शिष्यो का सहज विनयभाव़ था .....

गोचरी का समय हुआ ।

दो-दो साधु तैयार होकर, आचार्यदेव के पास आकर इजाजत मांगकर गोचरी लेने के लिए चले गए । बहुत समय से तूटी हुई संघाटक व्यवस्था आज आचरण में आई । आचार्यदेव को पूछे बिना बहार से ही गोचरी निकलनेवाले साधु आज तो बराबर विनयपूर्वक पूछ-पूछकर ही गोचरी गए ।

आचार्यदेव मौनभावसे सबकुछ देखते रहे ।

गोचरी आई ।

शिष्य आचार्यदेवको अनुकूल चींजे वपराने के लिए तलपापड बने ।

''गुरुदेव ! यह वापरीए, यह वापरीए ! मुझे लाभान्वित कीजिए ।''

रोज तो आचार्यदेवको गोचरी भी बताई नही जाती, आचार्यदेवको खुद की गोचरी स्वतः ही लेनी पडती। आग्रह करने वाला कोई नही था ।

परंतु आज .....

सूर्योदय पश्चिम में हुआ था ।

आचार्यदेवने जिस जिससाधुकी लाई हुई गोचरी वापरी उन उन साधुओके हर्ष का पार न रहा । ''मुझे गुरुदेवका लाभ मिला.... '' ऐसा बोल के वे उछलने लगे ।

आश्चर्य की हारमाला आचार्यदेव देख रहे थे ।

गोचरी के बाद साधु संघाटक बनकर वडी नीति जाने लगे ।

जभी आचार्यदेव वडी नीति के लिए निकले तभी सभी ही साधु ''मैं साथ में आता हूँ, मैं साथ में आता हूँ ..... '' ऐसे रीतसर जीद करने लगे । आचार्यदेवने एक साधु का नाम लिया, तभी बाकीके साधु शांत हुए ।

दुपहर के प्रतिलेखनमें भी सुबह की तरह भरपूर उत्साह के साथ सभी साधु उपस्थित !

संपूर्ण दिन के दौरान मिलने आनेवाले भाई-बहनोको साधुओने विनयपूर्वक

विदाय दे दी ।

''आपको कोई भी तकलीफ हो, तो हमारे आचार्यदेवको मिल सकते हो! यह हमारा विषय नही है । आचार्यदेव हमें कहेंगे, उसी के अनुसार हम करेगें। आचार्यदेवने हमें इस कार्य की इजाजत दी नही है ..... ''

आचार्यदेव ने खुदके सगे कानो से बहुत साधुओ के मुख से यह शब्द सुने।

सांज ढली । स्थंडिल-मात्रु की वसति देखने का आचार तो कितने ही समय से लुप्त हो चुका था। परंतु आज तो प्रत्येक साधु बारीकाई से मात्रादिकी वसति देखने लगे थे।

खुद आचार्यदेव ने ही यह सब कुछ निरखा ।

संक्षेप में तमाम जिनाज्ञाओ का विधियुक्त पालन हरेक साधुमें दिखा दे रहा था । आचार्यदेव के आनंद का और उससे ज्यादा उनके आश्चर्यका कोई भी पार न था । तो भी संपूर्ण दिन तो वे मौन ही रहे थे । वाचनादि के सिवा उन्होंने कोई भी बातचीत की नही थी । बने हुए बनावो के आघात ने जाने के उन्हें ज्यादा से ज्यादा मौन रहने का उतरदायित्व सौप दिया हो । इसलिए ही 'यह सब परिवर्तन एक ही दिन में, एक साथ ही कैसे आया ? ' इस विषय की गले तक की तीव्र उत्कंठा होने पर भी संपूर्ण दिन के दौरान उन्होने किसी को भी कुछ भी पूछा नही था ।

सूर्यास्त हुआ ।

आवश्यक क्रियाएँ संपूर्णता को वरी ....

सभी साधुभगवंत आचार्यदेव के पास आकर विनयपूर्वक बैठे ।

मुख्य शिष्य हरिषेण विजय आचार्यदेव के सबसे नजदीक गया, खुदका मस्तक आचार्यदेव के चरणोमें लगा दिया । जोर-जोर से वह साधु विलाप करने लगा । आचार्यदेव सागर के समान उदार थे ही, उसके सब कटुवचनो को भूलकर उसकी पीठ पर स्नेहपूर्ण हाथ फिराने लगे ।

''चल शांत हो जा । भूल तो सभी की होती है । तुझे घोर पश्चाताप हुआ है, वही तेरी महानता है .... '' ऐसे आश्वासन के शब्द कहे ।

परंतु हरिषेण विजय का रुदन नही अटका ।दो-चार मिनिट आचार्यदेवने

उसे रोने दिया । अंततः उसने मस्तक उठा लिया । ''मेरे प्राणप्रिय गुरुदेव ! मेरे जैसा अधम इस जगत में कोई नही होगा ।

अहाहा ! दीक्षा के दिन मेरी भावना थी कि यदि शक्ति होगी तो संपूर्ण जीवन मैं मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करुँगा । बस, इस आहार की लालसा को धरती में डाँट दूंगा ।

परंतु ओ, गुरुदेव !

मैं नालायक निकला। मेरी आसक्तिओ ने मर्यादा तोडी । मैं आधाकर्मी जैसे भयंकर दोषो का सेवन करनेमें तत्पर बना । आपको पूछे बिगर गृहस्थो को आदेश देकर–मेरी घोर आसक्तिओ को पोषा । उसके लिए मैने आपकी निंदा की। आपको जीद्दी–गमार कहा ।

ओ गुरुदेव ! मैंने रातको भी खाया । बदाम–काजु मेरे पास छुपा के रखकर मैंने रात को खाए । हाय ! मेरी अधमताओकी तो मैं क्या बात करुं ?

दीक्षा के समय के मेरे भाव कहाँ ? और मेरा अधमाधम जीवन कहाँ ?

''पूज्यवर ! मुझे वापस दीक्षा दीजिए, मुझे अभी सच्चा साधु बनना है .....''

बोलते बोलते हरिषेणविजय फिर से रो पडा । उसका हदय भर आया ।

यह विरल दृश्य को देखकर ४० साधु भी जोर जोर से रोने लगे । सचमुच तो उन सभी को भी खुद के स्वच्छंदता, निष्ठुरता, गुरुद्रोह,कपटवृत्ति का घोर–अतिघोर पश्चाताप प्रगट हुआ ही था, वे ही उन्हे रुला रहे थे ।

''गुरुवर ! मात्र हरिषेणविजय को ही नही, हम सभीको पुनः दीक्षा प्रदान कीजिए । हमारे पाप कहाँ कम है ? तीर्थंकरदेवसमान आपका द्रोह करने में हमने क्या कमी रखी है ? आपके सामने कैसे कैसे शब्द उच्चारे ?

आपकी यह महानता थी कि आप यह सब कुछ निगल गए । हमे कुछ नही कहा । सब कुछ सहते रहे । हमने आपको अकेले छोड देने की स्पष्ट धमकी दी । आपको कितना आघात लगा होगा ....

गुरुदेव ! हमें माफी नही, घोर शिक्षा चाहिए , तो ही हम सुधरेंगे ! कठिनमें कठिन प्रायश्चित दीजिए। आप हमारी दया बिलकुल मत करना ... ''

एकजुट होकर शिष्योने कहा ।

आचार्यदेव को आज परम संतोष हुआ । खुदके शिष्योका ऐसा परिवर्तन उनके लिए स्वर्गिय सुखोसे भी अधिक था ।

'' शिष्यो ! मैं तुम सभी को योग्य प्रायश्चित दूंगा ही । तुमे यह घोरातिघोर प्रायश्चित हुआ है, वह ही तुम्हारा सच्चा प्रायश्चित है । परंतु मुझे आज तुम सभीने अनहद आनंदका तौफा दिया है । तुम कह रहे हो वह सच ही है कि मेरे सदमे – मेरी चिंताएँ सीमातीत थी । परंतु उसको भूल जाओ । जो होना था वह हो गया। अभी मुझे किसी भी प्रकार की चिंता नही है ।

परंतु

एक ही प्रश्न मुझे सता रहा है । वह यह कि इतना जबरदस्त परिवर्तन आया कहाँ से ? ऐसा तो क्या हुआ ? कि मुझे अकेले छोड जाने की धमकी देनेवाले तुम सब मात्र एक रात्रि में ही महान मुनिवर बन गए ।

यह मुझे किसी भी तरह समझ नही आ रहा ।

हरिषेण ! तू ही बोल ... मुझे मेरे प्रश्न का समाधान दे ... ''

आचार्यदेव ने खुद की जिज्ञासा प्रगट की ।

और,

हरिषेण विजयने इस आश्चर्यकारी परिवर्तन के कारणभूत आश्चर्यकारी घटना की प्रस्तुति की ।

''गुरुदेव ! आप शांत चिंत से यह सब कुछ सुनना ।''

आपने हमें अकेली स्त्रीयो के साथ बाते करने पर सख्त उपालंभ–दाँट दिया । हम उसे सुनकर क्रोधित हुए, आपको छोड जाने की धमकी दी । थोडी देर के बाद आप जैसे ही स्थंडिल गए वैसे ही ४० साधुओ ने इकट्ठे होकर निर्णय कर लिया कि,

''अब आचार्य के साथ रहना नहीं है । यह सब रोज–रोज की कचकच नही चाहिए । हम सभीको संयम पालना आता है । गोचरी जाना आता है । आचार्य के बिना हमारा कुछ भी बिगडनेवाला नही है । हम आज रात को ही यहाँ से चुपचाप भाग जाएगे । रात के दौरान ज्यादा से ज्यादा चलके जितना दूर पहुँचा जाए, उतना दूर चले जाएँगे ताकि दिन के दौरान आचार्य हमें खोज न सके, हमें पकड न सके .... ''

इसलिए ही आधी रातको भाग जाने का हमने एकमत होकर निर्णय लिया । रातको जल्दी संथार गए । बारह बजे सब लोग उठ गए थे । परंतु आपको संथारे में बैठे हुए देखा इसलिए ही हम सभी संथारे में ही पडे रहे ।

रातको देढ–दो बढे तक तो आप करवते बदलते रहे थे । यह सब कुछ हमने सोते सोते देखा । आप निद्रावश बन जाए, बस उतना ही इंतजार हमे करना था ।

लगभग दो बजे यह पता चला कि आप निंद्राधिन हो गए हो..... इसलिए त्वरीत ही हम सब खडे हो गए ..... पीछले दिन ही हमने सब उपधि तैयार कर रखी थी । हम चुपचाप एक के बाद एक उपाश्रयमें से बहार निकलने लगे । आपश्री निंद्राधीन होने से और हमने बिलकुल आवाज न हो इस बात का ध्यान रखा होने से आपको यह सभी बातो का ख्याल नही आया ।

पोषमास होने से ठंडी बहुत ही कडक थी । हम सभी के पास दो–तीन कामली थी । वह हमने बराबर पहन ली थी । तो भी ध्रुजना तो चालु ही था । तो भी हमने आज निकल जाने का दृढ निश्चय कर ही लिया था । हमारा उपाश्रय गाँव के अंतमें होने से, लोगो के उठ जाने का भय हमें नही था । मार्ग देख लिया था । और ऐसे भी मुझे रास्तो का थोडा बहुत अंदाज तो था ही ।

उपरांत में हमारे लिए बडा आधार था । पुनम का चांद । हां! कल रातको पोष सुद पुनम थी । इसलिए पुनम का प्रकाश हमें आगे बढने में बहुत सहायक बने वैसा था ।

हम उस छोटे से जंगलीय मार्ग पर आगे बढे । ठंडी असह्य थी । इसलिए दो–तीन कामली पहनने पर भी हम थर–थर कंप रहे थे । उपरांत में वहाँ जंगल जैसा विस्तार होने से ठंडी ज्यादा लगे यह स्वभाविक था । अधुरे में पूरा नीचे की रेती भी बरफ के जैसी ठंडी बन गई थी । उसमें चलना बहुत कठिन हो रहा था।

तथा आजुबाजुमें झाड भी नही थे । मात्र छोटे–छोटे से पौधे उगे थे । इसलिए हवा को रोक सके वैसा कुछ नही था । आवाज करती हुई ठंडे हिम जैसी हवा हमे परेशान कर रही थी ।

पलभर तो ऐसा विचार भी आ गया कि, ''हम वापस मुड जाते है, ऐसी कातील ठंडीमें हम कैसे आगे बढेंगे ?''

परंतु तो भी यह विचार हमने दूर खंखेर दिया । ''थोडा चलेंगे, फिर दिक्कत नही होगी ? '' ऐसे मनको मजबुत किया । आकाश–पाताल एक हो जाए तो भी आपके पास वापस नही फिरने का निर्णय हमने अफर कर लिया था .... इसलिए ही हम आजुबाजु छोटे वृक्षोवाले उस मार्ग पर आगे बढ रहे थे ।

मुझे हुआ कि 'चलो मेदान की ओर नजर तो कर लूँ, वहाँ से आगे बढने का कोई शोर्ट रस्ता निकलता हो, तो यह मार्ग छोड दूं .... ''

इसलिए मैने मैदान में से निकलते एक दूसरे मार्ग के अनुसार नजर को आगे दौडाई। मुझे देखना था कि मैदान का मार्ग आगे की ओर अंत तक जाता है कि नही ?

मेरी दृष्टि कच्चे रस्ते के अनुसार आगे आगे बढ रही थी । मैदान बहुत लंबा–चौडा था । मेरी दृष्टि मेदान के बराबर बीच तक पहुँची, परंतु वहाँ ही मैं सडक रह गया । मेरा आश्चर्य का पार न रहा ।

गुरुदेव ! मैदान के बीचोबीच ही उस ही कच्चे रस्ते पे एक विराट मानवाकृति मुझे अस्पष्ट दिखाई दी । मैं उस आकृति से बहुत दूर था, इसलिए वह कौन है ? इसका तो मुझे कैसे ख्याल आए ? परंतु चंद्रप्रकाश से मैं इतना तो तय कर पाया कि कोई लंबी मानवाकृति वहाँ खडी थी ।

कौन जाने क्युं ? परंतु मुझे उस ओर जाने का, उस मानवकृति को देखने का मन हुआ । मैं मेरे मुख्य मार्ग को छोडकर उस मैदानीय कच्चे रस्ते पे आगे बढने लगा । मेरे पीछे पीछे दूसरे साधु भी उस ही मार्ग पर आगे बढे ।

परंतु गुरुदेव !

उस ही अवसर पर मुझे मेरा दीक्षादिन याद आया । मेरी उस समयकी भावनाएँ याद आई । आपके प्रति का अगाध बहुमानभाव याद आया । दीक्षा के बाद आपने मेरी कितनी संभाल की है, मुझे पढाकर – समझाकर कैसा तैयार किया है ... यह सब याद आया ।

उस उपकारका मैंने कैसा बदला चुकाया ? अरेरे ! मैनें यह कैसा डग भरा ? मैं यह क्या कर रहा हूँ ?

मेरे मनमें पश्चाताप की चिनगारी प्रगटने लगी । मेरी दृष्टि उस मानवाकृति की ओर थी, मेरा मन मेरे दोषो को याद करके रो रहा था ।

मुझे भी आश्चर्य हुआ ।

अचानक मेरे विचारोमें बदलाव क्यो आया ? अचानक मेरी भावधारा क्यो पलटी ? इस मानवाकृतिको जब से देखा तब से मेरे संवेदनका स्वरुप क्युं बदलने लगा ? गुरु के प्रति असद्भाव दूर होकर सद्भाव क्युं प्रगटा ? आहारसंज्ञा को छोडकर घोर तप आदरने की भावना पुनःक्युं प्रगटी ?

मुझे उस मानवाकृति के प्रति एक अजब–गजबका चुंबकीय आकर्षण होने लगा ? उनके कारण से ही यह परिवर्तन हो रहा है, ऐसा स्पष्ट अनुभव होने लगा ।

मैंने मेरी तेजी बढाई । जैसे जैसे मैं उस आकृति के पास पहुँचता गया, वैसे वैसे वह आकृति अधिकतर स्पष्ट होती गई ।

अंततः चन्द्र के देदिप्यमान प्रकाशमें मुझे उस कांतिमय देह और मुखका दर्शन हुआ ।

मैं ताकता ही रहा उस मुखारविंदको !

चंद्रकी सौम्यता भी फिक्की पडे वैसा वह मुख !

नीचे ढले हुए, नासिका के अग्रभाग पर स्थिर हुए दो नेत्र!

ऐसी भयानक ठंडीमें, तेज हवा में भी संपूर्णतः निर्वस्त्र देह ।

इस शीतपरिषहकी भयानकता के बीच भी मधुर स्मित को प्रसारता हुआ वह मुख !

सात हाथ जितनी विशाल काया !

कोई राजकुमार ही न हो वैसा रुपवान वह महामानव !

मेरी आँखो को तृप्ति ही नही हो रही थी । निष्पलक ही उस रुपामृतका मैं पान करता रहा । साथ के साधु भी नजदीक आ पहुँचे । उनकी हालत भी मेरे जैसे ही हुई थी ।

मैने साधुओ को कहा कि,

''यह कौन है ? कोई पहचानते हो? इस पुरुष के दर्शन मात्र से मेरे विचार–निर्णय पलट गए है ... ''

उस अवसर पर यह **नम्रसेन** विजय आगे आया । उसने वापस –वापस ध्यानसे उस मानवाकृति को निरखा, और उसके मुखमें से शब्द निकल पडे ।

''अरे ! यह तो **सिद्धार्थनंदन ! त्रिशलाके प्यारे !** क्षत्रियकुंड के **नभोमणि** ! कुमार वर्धमान ! भावि **तीर्थंकर** ।

मैं चोंक उठा । ''क्या यह कुमार वर्धमान है ? तुझे पक्की खबर है ? ''

'' हा ! हा ! मैं क्षत्रियकुंड का ही हूँ ना ? मैं था सोनी! इस कुमार के हाथ से तो मैने वर्षीदान लिया है । उनकी दीक्षाका भव्यातिभव्य वरघोडा मैने निहारा है । उनका तेज ! उनका वैराग्य ..... मैने सबकुछ नजरोनजर देखा है। यह तो इस बातको बरसो बीत गए, इसलिए पहचानने मैं थोडी मेहनत पडी ।'' नम्रसेनविजयने प्रत्युतर दिया ।

मेरे आनंदकी सीमा नही रही । २४ वे तीर्थंकर महावीरस्वामी होनेवाले है, इस बात का तो मुझे ख्याल था, परंतु इस रीत से दर्शन मिलेगें, उनकी ऐसी अजबगजब की साधना निरखने मिलेगी, ऐसी तो कल्पना भी कहाँ से हो ?

मैं उनके चरणोमें ही बैठ गया । ''साधुओ ! तुमे अभी क्या करना है ? यह अब तुम ही सोचो । मेरा अभी का निर्णय अफर है । मैं यहाँ से वापस जाँऊगा। मेरे गुरुदेव के चरणोमें गिरकर आँसुओ से उसको प्रभावित करुँगा । मैने उनको अघोर त्रास दिया है । अरेरे ! उसको याद करते हुए भी मुझे ध्रुजावट हो रही है। परंतु अभी वापस वही भूल नही होगी । मैं पुनःदीक्षा लूंगा । मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करुँगा । गुरुदेव का अत्यंत विनीत शिष्य बनके रहूँगा ।

मेरी तो तुम्हें भी सलाह है कि वापस फिरो । हम मार्ग भूले । कर्मोने और कुसंस्कारोने हमे मार्ग भूलाया, परंतु हमारा भाग्योदय कि हमारे पतन को हटाकर उत्थान की दिशा दिलानेवाले इन तीर्थंकर देवका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ .... बोलो तुम क्या सोच रहे हो ?'' मैने साधुओसे पूछा ।''

गुरुदेव ! सभी साधुओने उस बातको एकजुट होकर स्वीकार ली । सभी ही मेरे जैसे दृढ बन गए थे । उसमें मेरे शब्द समझ नही, परंतु देवाधिदेव का दर्शन कारण था ।

हमे पता था कि, ''साधनाकाल में प्रभु कुछ बोलेगे नही ।'' तो भी उनका दर्शन हमें उतना कुछ रुच गया कि हम आधेपोणे घंटे तक वहाँ ही बैठे रहे । ताँक –ताँक के उनको देखते रहे ।

उस महामानवने हमसे कुछ भी बात नही की, हमें कोई उपदेश नही

दिया.... अंतमें हम वापस लौटे । आप सुबह उठे, उसके पहले हम सब उपाश्रयमें आकर जम गए ।

गुरुदेव ! हमारे परिवर्तन का एक मात्र कारण वे वर्धमानस्वामी है । हम सब के तीर्थाधिपति भगवान पार्श्वनाथ है, परंतु हमें सच्चे संयम का दान देने वाले तो यह वर्धमान स्वामी ही है । गुरुदेव ! उनका हमारे पे यह जो उपकार है, उसकी स्मृति में हम उन्हे हमारे आराध्य देव के तौर पर याद करे, उपासना करे ...., तो कोई दिक्कत नही है ना ?''

हरिषेणविजयने घटना का विस्तृत बयान दिया ।

आचार्यभद्रसेनविजय इस घटना को सुनकर अत्यंत भावविभोर हो गए । इन्होने वहाँ ही हाथ जोडकर, मस्तक नमाकर अंतःकरणसे प्रभु वीर को वंदना अर्पी । शीष्योने प्रभुवीरको उपाक्ष्य देवके तोर पर उपासने की संमति दी ।

''परंतु गुरुदेव ! हमें समझमें नही आया कि एक महामानवके दर्शनसे इतने हद तक का परिवर्तन कैसे आता है ? ''

शिष्योने जिज्ञासा दिखाई ।

आचार्यदेवने प्रत्युत्तर दिया कि,

'' योग ग्रन्थोमें यह सब बताया हुआ ही है । जो आत्मा सिद्धि-विनियोग आशयको पाते है, उनके पास आनेवाले उपदेश दिए बिना ही उनके जैसे भावको स्पर्श दे यह संभव है । वर्धमान स्वामि ने तो संयम परिणति कि जबदजस्त सिद्धि पा गई है , इसलिए उनकी यह साधना तुम सबको तत्काल असर कर जाए उसमें आश्चर्य नही है । हा ! आप सभीका काल, भवितव्ता अनुकुल हुई, तभी यह शक्य हुआ है । मुझे तो आनंद है कि आज मेरा गच्छ फिर से मोक्षमार्गका सच्चा आराधक बना ।''

और वे संविग्न गीतार्थ आचार्यदेव साधुओके संग फिर से मोक्षमार्गकी साधना के रंगमें लीन बन गए ।

उपसंहार :-

(क) महोपाध्याय यशोविजयजीने कहा है कि **''कथा यथार्थैव मता मुनीन्द्रैः, वैराग्यहेतुः किल कल्पिताऽपि** ..... काल्पनिक ऐसी भी कथा यदि वैराग्यभाव का कारण बनती हो, तो वह सच्ची ही मानी गई है । दूसरे

अंगमें पूंडरीक अध्ययन काल्पनिक पदार्थो से हराभरा है ।
इसलिए 'यह कथा काल्पनिक है ' ऐसा विचार कर उसका अपलाप करना नही चाहिए । परंतु ऐसी कथा के द्वारा वैराग्य दृढ करना चाहिए ।

(ख) **उपमिति भव प्रवंचा कथा संपूर्णतः** काल्पनिक है, परंतु महावैराग्यका कारण होने से जैन साहित्यमें वह ग्रंन्थ चुडामणि जैसा गिना जाता है ।

(ग) **कुवलयमाला** ग्रंन्थ में प्रभु वीर के संबंधी कथा है, जो प्रायः अन्य कोई ग्रन्थ में दिखने नही मिलती ।

(घ) हुंडा अवसर्पिणीकाल है, पार्श्वनाथ प्रभु के थोडे साधु-साध्वीजीयाँ संयम में शिथिल होने के उल्लेख शास्त्र में दिए गए है । इसलिए कोई वृंद ऐसे शिथिल बने, और पुनःस्थिर हो जाए ..... यह सब असंभवित गिना नही जा सकता ।

(च) यदि हम भी गुणो में सिद्धि हासिल करेंगें, तो हमारे पास आनेवाले योग्य जीव हमारे से मोक्षमार्ग में हरणफाल लगानेवाले हो जाएगे ।

(छ) यदि हम किसी गुण को प्राप्त करना चाहते है, तो उस गुण में सिद्धि को वरे हुए महात्माओ के चरणो में लेट जाओ उनका भाव से पल्ला पकड लो .... तो वह गुण हमे भी आत्मसात हो जाएगा ।
क्रोध परेशान कर रहा है ? तो क्षमाभंडार महात्मा के चरणो में आलोटो ...
भोजनासक्ति पीडा दे रही है ? स्वाध्यायी – साधकोके सेवक बनो ...
ईर्ष्या सता रही है ? तो गुणानुरागीओ के अनुरागी बनो .....
यदि ऐसा करोगे तो
हम भी गुणसम्राट बनकर ही रहेंगे ।

मेरी अनुभूति

मेरी अनुभूति

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

1. कल्याण मंदिर, 2. रघुवंध (1-2 सर्ग), 3. कीरातार्जुनीच (1-2 सर्ग), 4. शिशुपालवध (1-2 सर्ग), 5. नैषधीचचरितम् (1-2 सर्ग) श्लोक, अर्थ, समास, अन्वय, भावर्थ सहित.

न्याय सिद्धांत मुक्तावलि (भाग 1-2) गुजराती विवेचन सहित.

व्याप्तिसंचक... चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित * सिद्धान्त लक्षण (भाग 1-2) चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित

सामान्यनिरूक्ति (गुजराती विवेचन) * अवच्छेदकत्वनिरूक्ति (गुजराती विवेचन)

आगम ग्रन्थो

ओधनिर्युक्ति (भाग 1-2)	द्रोणाचार्य वृत्ति + गुजराती भाषांतर (प्रताकारे)
ओ.नि. सारोद्धार (भाग 1-2)	विशिष्ट पंक्तिओ उपर विवेचन (प्रताकारे)
दसवैकालिक सूत्र (भाग 1 से 4)	हारिभद्रीवृत्ति + गुजराती भाषांतर
आवश्यक निर्युक्ति	(हारिभद्रीवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित भाग 1 से 8)
उत्तराध्ययन सूत्र	(शांतिसूरिवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित अध्ययन-1)
उपदेशमाला-सिद्धर्षिगणिवृत्ति	(54 गाथा) (गुजराती भाषांतर सहित)

सिद्धान्तरहस्यबिन्दुः (ओधनिर्युक्ति की विशिष्ट पंक्तिओनु रहस्य खोलती नई चन्द्रशेखरीया संस्कृत वृत्ति)

संयम-अध्यात्म-परिणतिपोषक ग्रन्थो

सामाचारी प्रकरण (भाग 1-2)	चन्द्रेशखरीयावृत्ति गुजराती भाषांतर सहित (दशविध सामाचारी)
योगविंशिका	चन्द्रेशखरीयावृत्ति सहित

स्वाध्यायीओ खास पढ़ें

स्वाध्याय मार्गदर्शिका (सिलेबस) * शास्त्राभ्यासनी कला (ग्रन्थों को कैसे पढ़े ? उसकी पद्धति)

मुमुक्षु - नूतन दीक्षित - संयमी के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें

* मुनिजीवन की बालपोथी (भाग 1-2-3) * संविग्न संयमीओने नियमावली
* हवे तो मात्र ने मात्र सर्वविरती
* गुरूमाता * वंदना * शरणागति * महापंथना अझवाला
* विराट जागे छे त्यार * त्रिभुवनप्रकाश महावीर देव
* महाभिनिष्क्रमण * ऊंडा अंधारेथी * विरागनी मस्ती

} ये नौ पुस्तकें को प्रत्येक आत्मार्थीओ को अवश्य पढ़नी जैसी है...

* धन ते मुनिवरा रे... (दस विध श्रमणधर्म पर 108 कडी + विस्तृत विवेचन)
* विश्वनी आध्यात्मिक अजायबी (भाग1-2-3-4)... (450 आसपास श्रेष्ठ प्रसंगो)
* अष्टप्रवचन माता... (आठा माता उपर विस्तृत विवेचन)
* महाव्रतो... (पाँच महाव्रतो उपर विस्तृत विवेचन) * जैनशास्त्रोना चूटेला श्लोको भाग1-2 (अर्थ सहित)
* आत्मसंप्रेक्षण... (आत्माना दोषो केवी रीते जोवा? पकडवा ? अेनु विराट वर्णन)
* मुमुक्षुओने मार्गदर्शन... (दीक्षा लेवामां नडरतभूत बनता अनेक प्रश्नो नुं समाधान)
* 350 गाथानुं स्तवन (भाग 1-2-3)... (पांच ढाळ उपर विस्तुत विवेचन सहित)
* सुपात्रदान विवेक (श्राविकाओने भेटमां आपवा-साची समज आपवा मंगावी शकशो)
* आत्मकथा (विरतिदूतनी 11 आत्मकथाओनो संग्रह) * दसवैकालिकचूलिकानुं विवेचन
* शल्योद्धारा (आलोचना करवा माटे उपयोगी सूक्ष्तम अतिचार स्थानो नो संग्रह)
* धन धन्नो अणगार रे * संघ मारो भगवान * शासन प्रभावना * यशोदा (गुज.) * यशोदा
* चतुर्विधसंघने मुंझवता प्रश्नो (भाग 1 से 4) * मा ते मा * माँ यानी माँ

उववुह, थीरीकरण, वात्सल्य, धर्म परिक्षा (भाग 1 से 3), आराधक विराधक चतुर्भगी, कूपदृष्टांतविशदीकरण

विरतिदूत मासिक 1 थी 120 अंक नो आखो सेट जेने पण जोइये, ते मेळवी सके छे.

हिन्दी मे अनुवाद

* किजीए सुपात्रदान, लिजीए फल महान * यशोदा * अहो वीरम्... महावीरम्... * माँ
* साधु-साध्वीजीओ की ऐसी अजोड भक्ति क्या आपने की है? * Miracle of Aura

प्रभु महावीर महाराजा साधनाकाल के दौरान प्रायः
तेजो-पद्म-शुक्ल और परमशुक्ल लेश्यामें ही रहते ।
यह लेश्या मतलब ही आजके विज्ञानकी भाषामें
AURA J
पवित्रतम औराकी शक्ति क्या होती है ?
यह जानने के लिए यह पुस्तक जरुर पढीएगा ।
बच्चोंको-युवानोको-वडीलोको सबको यह पुस्तक हृदयसस्पर्शी
बनेगा एसा मेरा विश्वास है।